संपादन:
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान
दीपक वर्मा

वितरण:
महेश बसेड़िया

सहयोग:
गजेन्द्र सिंह राठौर
रामभरोस यादव
अनिल पटेल
बृजेश सिंह

अकादमिक सहयोग:
चेतना खरे

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-34, अक्टूबर-नवंबर 2000

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518
ई-मेल: eklavyamp@vsnl. com
eklavyahoshangabad@bigfoot.com

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 50 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ व पिछला आवरण: सूर्य की सतह पर काले धब्बे दिख रहे हैं जो कि फोटोस्फियर में कम तापमान का क्षेत्र दिखाते हैं। आसपास के क्षेत्र से तापमान लगभग एक हज़ार डिग्री कम होने की वजह से यह क्षेत्र तुलनात्मक रूप से काला दिखता है परन्तु अपने आप में यह भी काफी चमकीला है – पूर्णिमा की चांदनी से दसियों गुना चमकीला। यह फोटो ग्यारह साल के सौर चक्र के उस दौर का है जब सौर सतह काफी एक्टिव होती है इसलिए बहुत से सौर धब्बे एक साथ दिख रहे हैं। वर्ष 2000 भी सौरचक्र का अत्यन्त क्रियाशील वर्ष है इसलिए वर्ष भर सूर्य की सतह पर खूब सारे स्याह धब्बे दिखाई देंगे। यह छायाचित्र दृश्य प्रकाश में खींचा गया है। *(लेख पृष्ठ 9 पर)*

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: ***एक्सप्लोरिंग द यूनिवर्स:*** *डब्लू. एम. प्रोथेरार, इ. आर. केप्रिओटी, जी. एच. न्यूसम; प्रकाशक: चार्ल्स ई. मैरिल पब्लिशिंग कम्पनी, ओहियो।* ***वर्ल्ड एपार्ट:*** *गाय. जे. कोनसोलमेग्नो एस. जे, मार्था डब्लू. शीफर; प्रकाशक: प्रेंटिस हाल, न्यूजर्सी।* ***द यूनिवर्स एक्सप्लेंड:*** *कोलिन रोनॉन; प्रकाशक: थॉमस एंड हडसन, लंदन।* ***एक्सप्लोरिंग द कॉस्मॉस:*** *: लुइस बरमन, जे. सी. इवांस; प्रकाशक: लिटिल ब्राउन एंड कंपनी, बोस्टन।* ***मैन्स व्यू ऑफ द यूनिवर्स:*** *गेराल्ड इ. ट्यूबर; प्रकाशक: क्राउन पब्लिशर्स न्यूयॉर्क।* ***ग्रेट बुक ऑफ बर्ड:*** *अनुवाद जॉन गिल्बर्ट; प्रकाशक: आर्च केप प्रेस, न्यूयॉर्क।* ***द राइज ऑफ इस्लाम एंड द बंगाल फ्रंटियर, 1204–1760:*** *रिचर्ड एम. ईटन; प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।* ***वाहन कैसे बने, कैसे चले:*** *सुमन कृष्ण; प्रकाशक: नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।* ***क्लासिक ट्रेन्स:*** *निकोलस फेथ; प्रकाशक: बॉक्स ट्री पब्लिशिंग लिमिटेड,लंदन।*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सपादकीय

पिछले दिनों हमारे कुछ पाठकों ने पत्र लिखकर, संदर्भ में छपे एक विज्ञापन के बारे में अपनी आपत्ति ज़ाहिर की। इस तरह की आपत्ति के संबंध में कई बातें उठती हैं और उन पर चर्चा ज़रूरी है। यह सही है कि संदर्भ अपने लेखों के माध्यम से न केवल पाठकों में वैज्ञानिक शोध की जानकारी फैलाना चाहती है बल्कि उससे भी बढ़कर उनके बीच एक समालोचनात्मक दृष्टिकोण और सामाजिक प्रतिबद्धता के लिए जगह बनाना चाहती है।

इस प्रयास का एक और पक्ष है जिसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। संदर्भ की सार्थकता इसी में है कि हम अधिक-से-अधिक पाठकों, खासकर स्कूली शिक्षकों व विद्यार्थियों तक पहुंचें। यह तभी संभव होगा जब संदर्भ की कीमत उस सीमा में रह पाए जो अधिक-से-अधिक हिन्दी भाषी पाठकों की पहुंच में हो। सभी खर्च मिलाने पर संदर्भ की एक प्रति की कीमत पच्चीस रुपए पड़ती है। जबकि आज संदर्भ की एक प्रति दस रुपए में बेची जाती है तथा वार्षिक सदस्यों को 8.33 रु. में। 25 रुपए की लागत कीमत पर 6000 प्रतियां बिकें तब पत्रिका अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है। लेकिन जब तक यह लक्ष्य हासिल नहीं हो पाएगा तब तक किसी-न-किसी रूप में सबसिडी पर निर्भर होना ज़रूरी है।

संदर्भ पत्रिका को 1994 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार से मिले वित्तीय अनुदान के आधार पर शुरू किया था। वह अनुदान आज भी जारी है, लेकिन इस तरह का शासकीय अनुदान अनंतकाल तक मिलता रहेगा यह अपेक्षा करना उचित नहीं है। और फिर एक पत्रिका की माली हालत को लंबे समय तक एक ही वित्तीय स्रोत पर

निर्भर बनाए रखना विवेकपूर्ण नहीं है। अतः अनुदान के स्रोतों को बढ़ाना जरूरी हो जाता है ताकि किसी एक के हट जाने से पत्रिका डगमगा न जाए।

इसी सिलसिले में हमने निजी कंपनियों द्वारा प्रायोजन के प्रस्ताव का स्वागत किया है। हम मानते हैं कि संदर्भ जैसी शैक्षिक पत्रिकाओं को वित्तीय समर्थन देना इन कंपनियों का सामाजिक दायित्व है। जहां एक तरफ ये बाते हैं वहीं दूसरी तरफ इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि कंपनियां विज्ञापन के माध्यम से अपना परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करना चाहेंगी।

हर कंपनी के काम के अच्छे व बुरे पक्ष होंगे, उनका समाज की किसी न किसी श्रेणी पर प्रतिकूल प्रभाव भी रहेगा (जैसा कि सरकार के साथ भी होता है)। तो क्या उनसे विज्ञापन लेने से पत्रिका के स्वतंत्र व समालोचनात्मक दृष्टिकोण पर प्रभाव पड़ता है? निश्चय ही ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका कई पत्रिकाओं ने सामना किया होगा। इन सवालों के संदर्भ में हमें एक व्यवहारिक रुख अपनाना होगा। विज्ञापनों में पेश किए गए दावे या मतों को संदर्भ समूह या एकलव्य का मत नहीं माना जा सकता। फिर भी हमारा प्रयास यही रहेगा कि विज्ञापनों के संदेश प्रत्यक्ष रूप से गलत या आपत्तिजनक न हों।

वहीं संदर्भ के लेखों में प्रकृति और समाज की सच्चाइयों की हर पहलू से बारीकी और बेबाकी से जांच-पड़ताल की कोशिश हमेशा जारी रहेगी। ऐसी समालोचनात्मक संस्कृति को बनाने के लिए समाज से व्यापक समर्थन जुटाने की कोशिश भी की जाती रहेगी। ऐसे संवाद को बनाए रखने में पाठकों की पहल का भी हमेशा स्वागत होगा।

– संपादक मंडल

‘संदर्भ’ की सार्थकता तभी तक है जब तक उसे पढ़ने वाले हैं।

संदर्भ को आप बरसों से जानते हैं, पढ़ते हैं,
संदर्भ के लिए कुछ करने का मौका आपके पास है।
अपने आसपास के स्कूलों, कॉलेजों, शिक्षकों,
अपने मित्रों को संदर्भ के बारे मे जानकारी दीजिए।
उन्हे संदर्भ पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनाइए।

यदि आप संदर्भ के लिए पांच वार्षिक सदस्य बनाते हैं तो एक साल तक संदर्भ आपको बतौर उपहार भेजी जाएगी। दस सदस्य बनें तो दो साल, पंद्रह बनें तो तीन साल तक।

बस आपको इतना ही करना है कि आपके द्वारा बनाए गए पांच सदस्यों का सदस्यता शुल्क, नाम एवं पते हमारे पास भेजिए।

सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेज सकते हैं। बैंक ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।

ड्राफ्ट बनवाई या मनीऑर्डर का खर्च आप सदस्यता शुल्क में से काटकर शेष राशि भेज सकते हैं।

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
म. प्र. 461001, फोन: 07574 - 53518
ई-मेल: eklavyahoshangabad@bigfoot.com

सूरज पर धब्बे   9

सूरज की चकती पर दिखाई देने वाले धब्बों को लेकर हज़ारों वर्ष से लोगों की रुचि रही है। सर्वप्रथम गैलीलियो ने अपने सशक्त तर्क सामने रखते हुए सन् 1612 में कहा कि ये धब्बे सूरज की सतह पर ही मौजूद हैं, किन्हीं पिंडों की छाया या अन्य बाहरी कारकों की वजह से नहीं हैं। दो सौ साल बाद इसी कथन की जांच करते हुए एक अन्य वैज्ञानिक ने पता लगाया कि इन सौर्य धब्बों का एक ग्यारह साल का चक्र भी चलता है।

इस लेख में सौर्य धब्बों के बारे में हमारी समझ का ब्यौरा तो है ही साथ ही उनकी खोज और उस समय के विवादों का एक ऐतिहासिक वृत्तांत भी है।

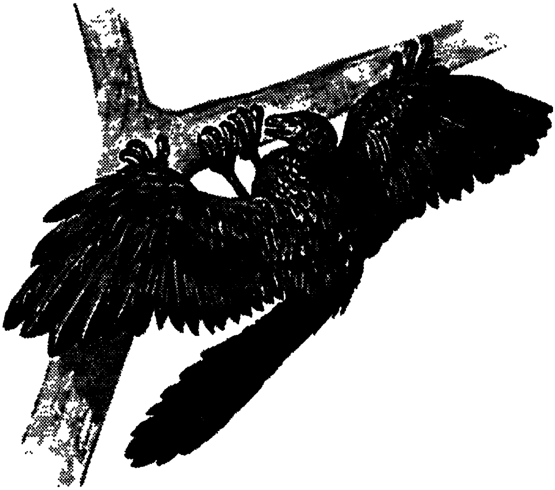

वे दौड़ते-दौड़ते उड़ने   27

आकाश में उड़ने वाले पक्षी मन को लुभाते हैं इसमें कोई दो राय नहीं। लेकिन इन पक्षियों का विकास कैसे हुआ इसे लेकर ज़रूर दो तरह के मत हैं। एक मत को मानने वाले कहते हैं कि एक तरह के डायनोसोर से पक्षियों का विकास हुआ। बतौर सबूत 14 करोड़ साल पुराने ऑर्कियाप्टेरिक्स के जीवाश्म मौजूद हैं। रूस में मिले जीवाश्मों के आधार पर कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि पक्षियों का विकास डायनोसोर से नहीं बल्कि और भी बहुत पहले किसी अन्य सरीसृप से हुआ है। वाकई मामला काफी गुथा हुआ लगता है।

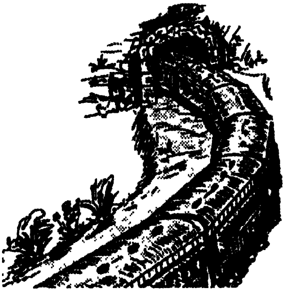

80 दिन में दुनिया . . . 47

इस विज्ञान कथा में फिलिस फॉग ने अपने दोस्त से शर्त लगाई कि वे दुनिया का चक्कर अस्सी दिन में पूरा करेंगे। इसी शर्त की वजह से वे 1875 में भारत आते हैं और बंबई से कलकत्ता तक का सफर रेल से पूरा करते हैं। यात्रा तो यादगार थी ही लेकिन उस दौर की भारतीय रेल भी कम दिलचस्प नहीं थी।

कांटों का घरौंदा . . . 93

इस कुदरत में कीट किस्म-किस्म की सामग्री इस्तेमाल कर अपने घरौंदे बनाते हैं। बबूल के पौधों पर कांटों से घरौंदा बनाने वाले इस कीट की तो बात ही कुछ निराली है।

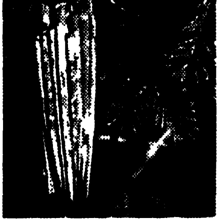

शैक्षिक संदर्भ

अंक: 34 अक्टूबर-नवंबर 2000

इस अंक में

आपने लिखा 6

सूरज पर धब्बे 9
टी. वेंकटेश्वरन

जुकाम क्यों होता है 25
सवालीराम

वे दौड़ते-दौड़ते 27
अरविंद गुप्ते

क्या बताती है 38
कमलेशचंद्र जोशी

ज़रा सिर खुजलाइए 46

80 दिन में 47
ज्यूल्स वर्न

प्रमेयों की गुत्थियां 63
रामकृष्ण भट्टाचार्य

बंगाल में इस्लाम 75
रिचर्ड ईटन

कांटों का घरौंदा 93
के. आर. शर्मा

संदर्भ का 33 वां अंक मिला। अब संदर्भ वक्त पर मिल जाती है। पत्रिका में 'बंगाल में इस्लाम' लेख पढ़ा। संदर्भ पत्रिका एक शैक्षिक विज्ञान पत्रिका है, न कि समाज विज्ञान या राजनीति या अर्थशास्त्र की पत्रिका। इसमें आप विज्ञान के ही लेख छापा करें। बंगाल में इस्लाम नामक लेख इस पत्रिका के विषय से हट कर है।

'पानी की कठोरता' लेख ऐसा था जैसे रसायन शास्त्र का कोई अध्याय। जबकि संदर्भ पत्रिका में ऐसे लेख आते हैं जिससे हमारी विषय की समझ बनती है, जानकारी प्राप्त होती है।

'तोबा ये मतवाली चाल' पढ़कर हमें सांपों के बारे में काफी जानकारी मिली।

मोईउद्दीन बुरहानी
शुजालपुर, म. प्र.

संदर्भ का 33वां अंक पढ़ा। हमेशा की तरह जानकारी का खज़ाना। सांपों की चाल के बारे में पहली बार जान पाया। इस्लाम के प्रसार के कारणों की तथ्य परक जानकारी मिली, हालांकि सामान्य धारणा यही है कि इस्लाम का प्रसार ताकत/आतंक के कारण ही हुआ।

'शुल्व सूत्र' से संबंधित जानकारी रोचक थी। प्राचीन मापों जैसे बित्ता, अंगुल, पुरुस आदि का गांवों में आज भी यदा-कदा प्रयोग होता है – अक्सर कहा जाता है – कुएं में दो पुरुस पानी है।

पृथ्वीराज चौहान के संबंध में तो दो पंक्तियां काफी मशहूर हैं:

चार बांस, चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूको चौहान॥

गुब्बारे के आगे या पीछे जाने का प्रमाण काफी जटिल तरीके से दिया गया है। मैं समझता हूं भार की तुलना अंतरिक्ष यान से की जा सकती है। अंतरिक्ष यान बहुत तेज़ गति से चलते हैं परंतु इसके अंदर भी वस्तुएं अपने स्थान पर बनी रहती हैं, या यान के अंदर के किसी कारण/बल से प्रभावित होती हैं। चूंकि भार पर लगने वाले बाह्य बल या हवा का दबाव/झोंका गुब्बारे पर कोई असर नहीं डाल सकता, अतः गुब्बारा अपने स्थान पर ही बना रहेगा।

पाई के मान के संबंध में बहुत कुछ पढ़ने को मिला पर लेख में एक जगह गणितीय गणना में त्रुटि है। संभवतः यह मुद्रण की त्रुटि होगी। पृष्ठ 43 पर अंतर्वृत की त्रिज्या निकालने के लिए जिस सूत्र का प्रयोग किया है वह निम्न है।

$$(r_1)^2 + (1/2)^2 = (1)^2$$
$$r_1^2 = 1-1/4$$
$$r_1^2 = 3/4$$
$$r_1 = 3/2$$

यहां $\sqrt{3}/2$ होना चाहिए।

इसके आगे की गणना इस तरह होनी चाहिए थी:

$2\pi r_1 < C$

$2\pi(\sqrt{3}/2) < 6$

$\pi \times \sqrt{3} < 6$

$\pi < 6/\sqrt{3}$

$\pi < \sqrt{3} \times \sqrt{3} \times 2/\sqrt{3}$

$\pi < 2\sqrt{3} = 3.464$

अत: $3 < \pi < 3.464$

संदर्भ की उपयोगिता पर कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता, इसकी एक-एक पंक्ति महत्वपूर्ण है। और हां, समय पर संदर्भ प्रकाशित करने के लिए बधाई।

दिलीप झा
आरंग, रायपुर, म. प्र.

33 वां अंक बिना प्रतीक्षा कराए ही अगस्त के पहले ही सप्ताह में मिल गया। मुखपृष्ठ और पिछले आवरण पर दिए हुए चित्र को देखते ही मन में कौतुहल जाग पड़ा कि यह सर्प और ये टेढ़ी आकृतियां क्या प्रकट करना चाहती हैं? सूची वाले पृष्ठ पर आपने जो एक जानवर का चित्र (पूंछ में कुछ घास या तिनके दबाए हुए) दिया वह बहुत ही रोचक और जिज्ञासा पैदा करने वाला लगा। कृपया इसके बारे में आगामी किसी अंक में विस्तृत जानकारी दीजिए।

मुझे आपसे एक शिकायत भी है कि आप पाठकों की शिकायतों का कोई स्पष्टीकरण नहीं देते। शुभदा जोशी का लेख 'बच्चे और जंग' सामयिक और बाल मनोविज्ञान पर उनकी पकड़ प्रकट करने वाला था। 'पानी की कठोरता' वाला लेख ज्ञानवर्द्धक लगा लेकिन लेखक को इसे और अधिक विस्तृत करके और कई हिस्सों में बांट कर पानी के खारेपन से संबंधित जिज्ञासाओं का हल प्रस्तुत करना चाहिए – जैसे ज़मीन में पानी कहीं खारा तो कहीं मीठा क्यों होता है? खारे पानी में साबुन क्यों फटता है और फटने के बाद जो दही जैसे चिथड़े से बनते हैं क्या उनमें साबुन और पानी के लवणीय पदार्थ दोनों होते हैं? इत्यादि।

जुई दधीच को मैं हार्दिक धन्यवाद देना चाहता हूं। उन्होंने पाई का इतिहास और उसके मान 22/7 को सिद्ध कर मेरे गणितीय ज्ञान को एक नया आयाम दिया है। मुकेश इंगले का सर्प गति पर आधारित लेख जीव के प्राकृतिक संतुलन की एक मनोहर झांकी प्रस्तुत करता है। पिछले अंक में 'ज़रा सिर खुजलाइए' में गुब्बारे के आगे आने की बात तो मैंने भी सोच ली थी लेकिन मुझे विज्ञान की भाषा में इसका जवाब देना नहीं आया।

'बंगाल में इस्लाम का फैलना' लेख छापकर आपने धर्म, भूगोल और इतिहास के रिश्तों की आधारभूमि पर एक स्वस्थ बहस शुरू करने का प्रयास किया है जो सराहनीय है। रिचर्ड ईटन द्वारा बंगाल में इस्लाम के विस्तार के संबंध में प्रचलित धारणाओं के विपरीत जो निष्कर्ष निकाले हैं उन्हें पढ़कर ताज्जुब होता है कि भारत के स्वयं के इतिहासकार आज तक प्राय:

पूर्व स्थापित धारणाओं के आधार पर ही इस्लाम के विस्तार को क्यों सिद्ध करते रहे, क्यों उन्होंने भौगोलिक तथ्यों को नज़रअंदाज़ किया।

रमेश कुमार जांगिड़
भद्रा, हनुमानगढ़, राजस्थान

33 वां अंक बहुत ही रोचक व जानकारियों से युक्त होने के कारण बहुत ज़्यादा पसंद आया जिसमें जुई दधीच का लेख 'परिधि का त्रिज्या से संबंध' और मुकेश इंगले का लेख 'तौबा! ये मतवाली चाल' विशेष तौर पर रोचक लगे। आपसे विनती है कि आने वाले अंकों में प्रारंभिक रसायन (अणु, संकेत, सूत्र, संयोग क्षमता) आदि विस्तार से समझाए।

अभिषेक
हरदा, म.प्र.

मुकेश इंगले द्वारा लिखित लेख 'तौबा ये मतवाली चाल' पढ़ा, बहुत अच्छा लगा।

बच्चों के साथ बातचीत 'बच्चे और जंग', 'पानी की कठोरता' बहुत ही रोचक लगे।

अजय नेमा
शाजापुर, म.प्र.

सवालीराम से पूछे हैं सवाल

मैं संदर्भ पत्रिका का वार्षिक सदस्य हूं व कक्षा ग्यारहवीं का छात्र हूं। आपकी पत्रिका द्वारा मेरे कई सवाल सुलझ जाते हैं। कृपया मेरे निम्न सवालों का जवाब पत्रिका के माध्यम से दें।

1. चंद्रमा पर वायुमण्डल क्यों नहीं है?
2. ठण्डे सूप की अपेक्षा गर्म सूप क्यों स्वादिष्ट लगता है?
3. पृथ्वी पर उत्पन्न प्रथम जीव को क्या कहा गया?
4. किस ग्रह में नए जीवन की खोज की गई है?

ये सारे प्रश्न ग्यारहवीं के कुछ छात्रों द्वारा पूछे गए हैं।

दीपक कुमार सोंधिया
बिरसिंहपुर, ज़िला उमरिया, म. प्र.

यदि आपके पास इन चारों में से किसी भी सवाल का जवाब हो हमें लिख भेजिए। इन्हें संदर्भ के आगामी अंक में प्रकाशित किया जाएगा। — संपादक मंडल

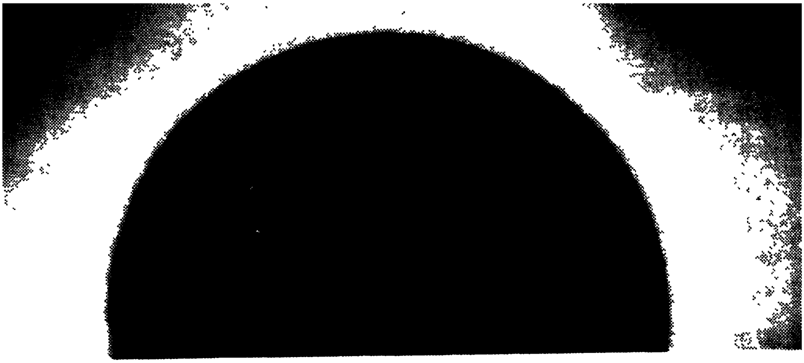

सूरज पर धब्बे और देश में अकाल

"सूर्य में काले धब्बे न..न..न! वो तो दैवीय ग्रह है। किसी दैवीय ग्रह पर धब्बे कैसे हो सकते हैं?" जब मान लिया गया कि धब्बे हैं तो ब्रिटिश हुकूमत ने इसका फायदा भी उठा लिया – और जनता को राहत देने के नाम से झाड़ पोंछ लिए अपने हाथ।

टी. वी. वेंकटेश्वरन

घाघरों की लंबाई, बुशर्ट की आस्तीन, शेयर बाज़ार और गहरे समुद्र में मछलियों की उपलब्धता – ऐसा माना जाता है कि ये सभी सूरज की गतिशील हरकतों से जुड़े हैं और इनमें एक नियमितता है।

शायद ये संबंध गैरवाजिब लगे मगर इसकी खासी संभावना है कि

सूरज से विसर्जित होने वाली सौर्य लपटें और चुंबकीय तूफान हमारी दुनिया में दूरसंचार तंत्र को पंगु बना सकते हैं। सूरज की सतह पर अलग-अलग अनियमित आकारों के काले धब्बे नज़र आते हैं। यह बाहरी सतह फोटोस्फियर के नाम से जानी जाती है और ये काले धब्बे सूरज की क्रियाशीलता प्रदर्शित करते हैं। ये काले धब्बे इतने विशाल होते हैं कि इन्हें नंगी आंखों से देखा जा सकता है मगर इन्हें नंगी आंखों से देखने की कोशिश बिलकुल भी मत कीजिएगा, आंखों को नुकसान पहुंच सकता है।

किसने नज़र मिलाई

आंखों से इन काले धब्बों को निहारने का सबसे पहला उल्लेख 28 ईसा पूर्व चीन में मिलता है। माना जाता है कि ग्रीक दार्शनिक अनेक्सा-गोरस ने 467 ईसा पूर्व इन धब्बों पर गौर फरमाया था। लेकिन अरस्तू की अंतरिक्ष की परिकल्पना का प्रभुत्व छा जाने के बाद तो इस दिशा में एक तरह से अंधेरा ही हो गया, क्योंकि इस परिकल्पना के अनुसार सूर्य और चांद तो दैवीय ग्रह थे और इनमें कोई भी धब्बा या दाग तो हो ही नहीं सकता। इस प्रभुत्व के चलते कई शोधकर्ताओं ने एक तरह से इन्हें नज़रअंदाज़ ही कर दिया। यहां तक कि योहानस केपलर जैसे खगोलज्ञ ने 1607 में एक काला धब्बा देखा, लेकिन उसने व्याख्या की कि यह तो बुध ग्रह है जो सूरज के सामने से गुज़र रहा है।

वह तो गैलीलियो था जिसने टेलिस्कोप की सहायता से इन दैवीय पिंडों की जांच-पड़ताल के बीच इन काले धब्बों का व्यापक अध्ययन किया और सन् 1612 में इसे लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया। हालांकि उसे प्रचलित स्वीकार्य धार्मिक मान्यता के खिलाफ जाने पर होने वाले खतरों को लेकर हल्की-सी चेतावनी भी मिली लेकिन वह लगा रहा; और काफी मशक्कतों के बाद स्थापित कर पाया कि ये धब्बे सूरज का ही भाग हैं न कि कुछ और। लेकिन विवाद अभी थमा नहीं था।

लगातार इकट्ठा हो रहे प्रमाणों के बावजूद चर्च से जुड़े एक गणितज्ञ श्ईनर ने तर्क दिया कि ये काले धब्बे सूर्य के उपग्रह हैं, न कि उसकी सतह पर दाग क्योंकि सूर्य तो दैवीय ग्रह होने के नाते दागों, धब्बों से मुक्त है। उसने कहा कि जब ये उपग्रह सामने से गुज़रते हैं तो धब्बों के रूप में नज़र आते हैं। इधर गैलीलियो भी भिड़ा रहा और काफी अध्ययन के बाद उसने यह सिद्ध किया कि ये धब्बे सूरज की सतह पर ही हैं, उसके बाहर तो ये हो ही नहीं सकते। अब तक श्ईनर भी गैलीलियो के तर्कों को मान

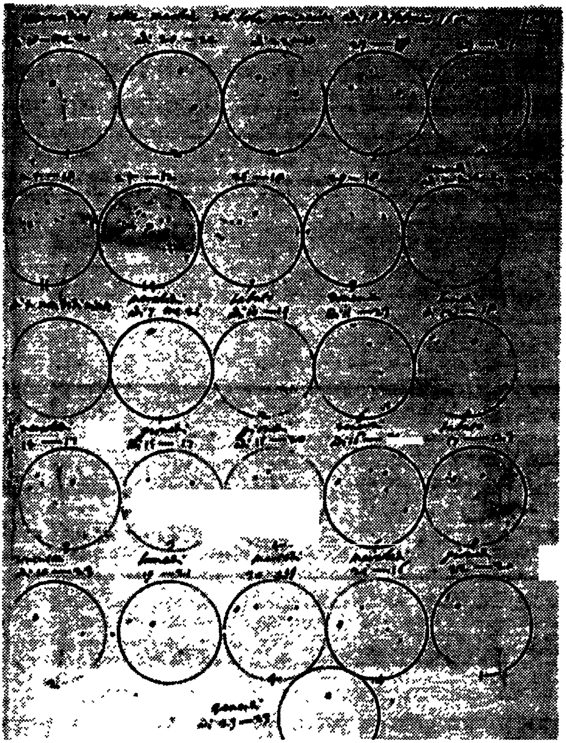

गैलीलियो का अवलोकन: सन् 1612 में अपने दोस्त वाइज़र को लिखे खतों में गैलीलियो ने सूरज का अवलोकन करते हुए दिखे सौर्य धब्बों की एक शृंखला का ज़िक्र किया था। गैलीलियो का कहना था कि उसने 1610 में ये धब्बे देख लिए थे परन्तु अपनी खोज की औपचारिक घोषणा 1612 में की। ऐसा नहीं है कि उस समय सिर्फ गैलीलियो ही इन धब्बों के बारे में जानता था। उसके समकालीन इंग्लैंड के गणितज्ञ थॉमस हैरियट, हॉलैंड के जोहनॉन फैब्रिसियस और जेसुइट क्रिस्टोफर शईनर ने भी सौर्य धब्बों के अवलोकन किए थे।

चुका था और वह खुद भी इनके अध्ययन में मशगूल हो गया। इन अध्ययनों को उसने 'रोज़ा ओरसिना' के नाम से एक किताब के रूप में प्रकाशित किया। आने वाले समय में इस दिशा में होने वाली शोध में 'रोज़ा ओरसिना' ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

कई शताब्दियों तक ऐसा चला कि सूरज के धब्बों में लोगों की रुचि जागी

और फिर मंद पड़ गई। लेकिन अब सवाल बुध ग्रह के आगे एक और ग्रह को खोजने का था तो इस बहाने लोगों का ध्यान उन्नीसवीं शताब्दी में फिर से सूरज के काले धब्बों की तरफ मुड़ा।

सन् 1781 में हर्शेल ने यूरेनस को खोजा। इससे लोगों को पता चला कि ऐतिहासिक तौर पर ज्ञात पांच ग्रहों के अलावा और भी ग्रहों का अस्तित्व है। लेकिन यूरेनस के साथ

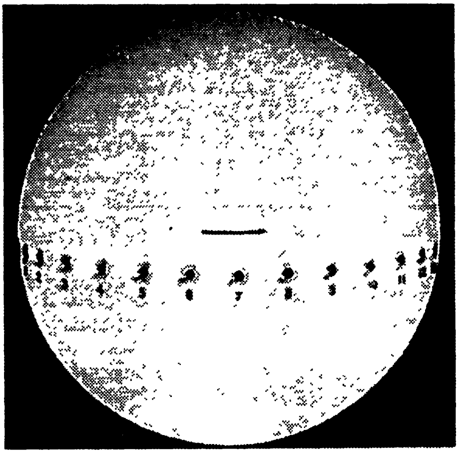

धब्बों की गति: सौर्य धब्बों का अध्ययन करने वाले सभी लोगों का यह अनुभव रहा था कि ये धब्बे सूरज की चकती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक का सफर करते हैं – पूर्व से पश्चिम की तरफ। गैलीलियो ने पाया कि सूरज की चकती पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने में इन धब्बों को लगभग 14 दिन का समय लगता है, चाहे ये केन्द्र के नज़दीक हों या उससे कुछ दूर। परन्तु उसने यह भी देखा कि इस तरह एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर जाते हुए ये धब्बे एक सी गति से नहीं चलते। चित्र में 1 से 13 बिन्दु बराबर समय अंतराल पर एक सूर्य धब्बे की स्थिति दर्शाते हैं। 1, 2, 3 और 11, 12, 13 बिंदु पास-पास हैं यानी कि केन्द्र की तुलना में किनारों के पास धब्बे को ज़्यादा समय लगता है।

गैलीलियो का कहना था कि अगर यह धब्बा किसी पिंड के सूर्य के सामने से गुज़रने की वजह से है तो उसका अर्थ यह होगा कि जब भी यह पिंड सूर्य के आगे से गुज़रता है, सूर्य की चकती के केन्द्र के पास उसकी गति अधिकतम होती है और किनारों के पास कम हो जाती है – हम उसे चाहे कहीं से भी देख रहे हों।

किसी भी पिंड की ऐसी विचित्र गति क्यों होगी। इसलिए गैलीलियो का निष्कर्ष था कि यह स्याह धब्बा सूर्य की सतह पर ही है और सूर्य के अपनी धूरी पर घूमने की वजह से कम-ज़्यादा गति करता हुआ दिखता है।

सूरज की संरचना: आमतौर पर धरती से सूरज का फोटोस्फियर दिखाई देता है। पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान कोरोना भी दिखाई दे जाता है। सूरज के बीचो-बीच जो केंद्रीय भाग है उसका तापमान 15 लाख डिग्री केल्विन है। फोटोस्फियर अपेक्षाकृत कम गरम हिस्सा है। इसी पर सौर्य धब्बे बनते हैं।

एक समस्या थी कि वह अपने प्रस्तावित पथ से हिल-डुल रहा था। खगोल-शास्त्रियों को लगा कि कोई और भी ग्रह है इसके पीछे, और 1846 में नेपच्यून को खोज निकाला।

इधर लोगों ने पाया कि बुध भी अपने पथ से विचलित होता है। तब एक तर्क आया, हो न हो सूर्य और बुध के बीच कोई और ग्रह मौजूद है। और-तो-और उत्साही लोगों ने इसे नाम भी दे दिया 'वल्कन' और इस रहस्मय ग्रह को खोज निकालने में जुट गए।

यह साफ है कि अगर ग्रह सूर्य के काफी पास है तो रात के समय उसको देख पाना संभव नहीं होगा।

कुछ खगोलशास्त्री तो सुबह और शाम के आकाश में 'वल्कन' की झलक खोजने में लग गए; तो कुछ को एक नया तरीका सूझा कि यदि कोई ग्रह है सूर्य और मरकरी के बीच, तो जब यह सूर्य के सामने से गुज़रेगा तो एक काले धब्बे की तरह नज़र आएगा।

और इसलिए सैमुएल हेनरिख श्वाबे, जो जर्मनी के एक शहर डेशाउ में दवाइयां बनाने और बेचने का काम करता था, 1826 में 'वल्कन' को ढूंढ निकालने में लग गया। सूरज के काले धब्बे इस तरह की खोज में बाधा उत्पन्न करते हैं क्योंकि गलती से कोई

सूरज के धब्बे: सूरज की चकती पर आंखों से भी आसानी से दिखाई देने वाले काले धब्बे वास्तव में फोटोस्फियर के वे स्थान हैं जो अपेक्षाकृत कम तापमान वाले होते हैं। ये धब्बे आमतौर पर सूरज की शून्य डिग्री मध्य रेखा के दोनों ओर 5 से 40 डिग्री के बीच में पाए जाते हैं। एक और खास बात है कि ये प्रायः जोड़े बनाए होते हैं। नीचे के चित्र में दूर से देखने पर सौर्य धब्बों का छायाचित्र, साथ के चित्र में क्लोज़अप।

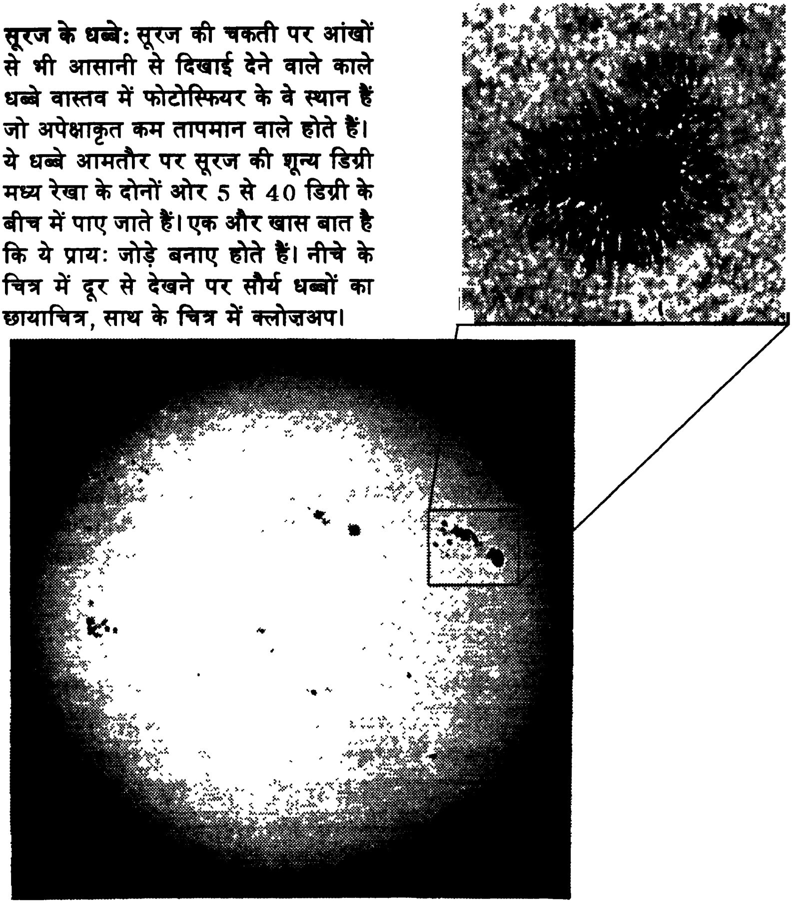

इन में से किसी भी धब्बे को ग्रह मान सकता है। इस दिक्कत से छुटकारा पाने के लिए श्वाबे ने पहला कार्य यह किया कि वह इन सब सूर्य धब्बों की स्थितियों को ध्यानपूर्वक नोट करने में लग गया। उसका रजिस्टर तो भरता चला गया और 1843 में श्वाबे को समझ में आया कि उसने एक महत्वपूर्ण खोज कर ली है जिसका कारण अज्ञात है। यह खोज थी कि 'इन धब्बों की संख्या दस साल में एक बार बढ़ती-घटती है'। काफी ना-नुकुर के बाद उस ने 1843 में अपनी खोज प्रकाशित की।

इस खोज ने लोगों का कोई खास ध्यान आकर्षित नहीं किया। मामला तब गर्म हुआ जब 1851 में एक अन्य खोजी अलेक्ज़ेंडर फॉन हमबोल्ट ने अपने निष्कर्षों के साथ जोड़कर श्वाबे की तालिकाओं को प्रकाशित किया। 1852 में एक स्विस खगोलज्ञ योहान रूडोल्फ वोल्फ ने खगोलशास्त्र के इतिहास से सौर्य धब्बों से संबंधित समस्त जानकारियों को संकलित कर विश्लेषित किया और पाया कि दरअसल सौर्य सक्रियता में एक 11.11 साल का औसत चक्र देखा जा सकता है।

लोगों के पास इसका कोई समाधान नहीं था कि सौर्य गतिविधि क्यों कम से अधिक और फिर कम होती रहती है। ऐसे में जैसा कि होता है लोगों ने धरती पर होने वाली घटनाओं और इन सौर्य गतिविधियों के बीच संबंधों की अटकलें लगाना शुरू कर दीं। इस विश्वास को और भी पक्का कर दिया एक और खोज ने, 1851 में जॉन लेमाउंट ने खोजा कि पृथ्वी का चुंबकीय

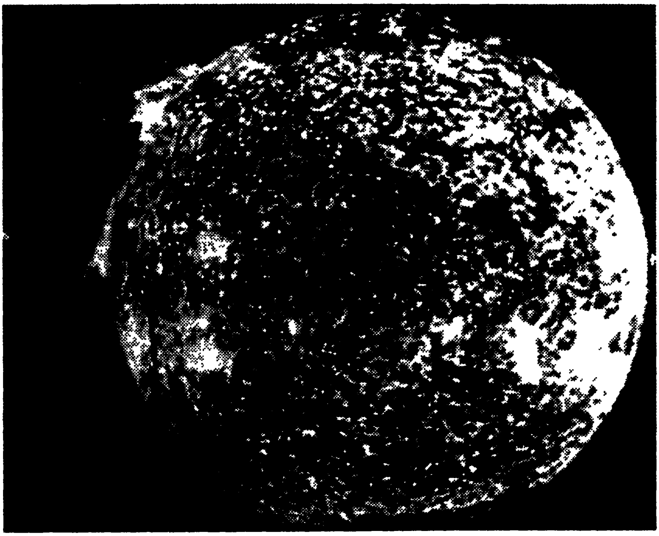

सौर्य ज्वालाएं: स्काई लैब की मदद से सन 1973 में उतारी गई इस तस्वीर में सूरज की सतह से उठने वाली लपटों को देखा जा सकता है।

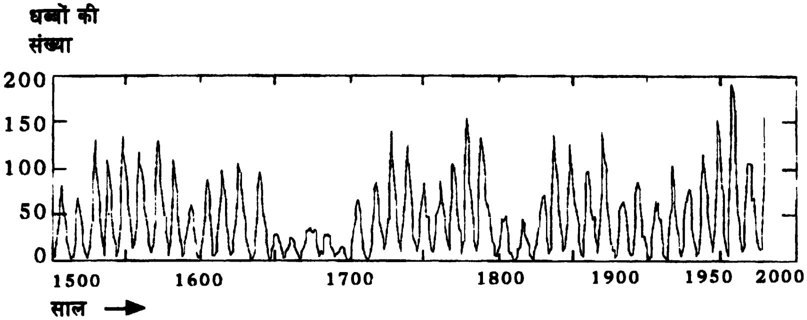

सौर्य धब्बों का चक्र: सूर्य सतह पर स्याह धब्बों की संख्या हमेशा एक-सी नहीं रहती, यह लगातार बढ़ती-घटती रहती है। पिछले चार-पांच सौ सालों के अवलोकनों के आधार पर तैयार किए गए इस ग्राफ में साफ दिखाई देता है कि हरेक सौ साल की अवधि में सौर्य धब्बों के 8 या 9 चक्र पूरे हो जाते हैं। एक और गौर करने लायक बात है कि सन् 1650 से 1700 के दौरान सौर्य धब्बों की संख्या अत्यन्त कम थी। (सन् 1610 के पहले के आंकड़े ध्रुवीय प्रकाश अर्थात ऑरोरा की जो घटनाएं रिकॉर्ड की गई हैं, उनके आधार पर तैयार किए गए हैं।)

क्षेत्र भी लगभग 10 साल में एक बार बदलता प्रतीत होता है।

अकाल कमीशन की रिपोर्ट

अटकलों के गर्म बाज़ार में एक चकित कर देने वाली अटकल थी सौर्य गतिविधि का भारत में पड़ने वाले अकाल से संबंध जोड़ा जाना। उस समय अंग्रेज़ों का शोषणकारी औपनिवेशिक शासन भारत में चल रहा था। उस काल में भारत के लोग बार-बार पड़ रहे अकाल से ग्रस्त थे। दादा भाई नौरोजी जैसे नेता का कहना था कि भारत की संपदा को लूटा जा रहा है, अर्थ व्यवस्था बर्बाद की जा रही है और परिणाम बढ़ती गरीबी और भुखमरी के रूप में सामने आ रहा है। इन सबके चलते औपनिवेशिक सरकार ने सन् 1880 में एक 'अकाल कमीशन' बिठाया। इस कमीशन का काम था अकाल के कारणों का पता लगाना और समस्या के लिए समाधान सुझाना।

उस समय एक प्रमुख खगोलज्ञ था नोर्मन लोकियर जो 'सूरज के काले दागों' के अध्ययन में शामिल था। उसने मद्रास प्रेसिडेंसी से 1801 के बाद के अकालों की तारीखें ली और कहा कि इन तारीखों और सूरज के 'कम गतिविधि के काल' में एक संबंध दिखता है। उसने अपने इस निष्कर्ष को अकाल कमीशन के सम्मुख प्रभावी

तरीके से पेश किया। परिणाम यह निकला कि अकाल कमीशन ने कहा कि ये अकाल "इंसान की हरकतों से नहीं आए बल्कि कुदरती प्रकोप हैं।" ऐसे में सरकार क्या कर सकती है — सिवाए राहत के लिए कुछ कदम उठाने के! स्याह धब्बों के बारे मे इस सिद्धांत की वजह से अंग्रेज़ शासक अपनी गैर-बराबरी की आर्थिक नीतियों से बरी हो गए।

इस घटना का दूसरा पक्ष यह था कि चूंकि यह कहा जा रहा था कि सौर्य गतिविधि कृषि को प्रभावित करती है इसलिए नोर्मन लोकियर ने एक आधुनिक खगोलशाला स्थापित करने का प्रस्ताव रखा और इस तरह सन् 1889 में कोडाईकनाल सौर्य खगोल-शाला अस्तित्व में आई।

स्याह धब्बों का पृथ्वी पर असर

सौर्य धब्बे काले घने इसलिए नज़र आते हैं क्योंकि अपने आसपास के क्षेत्र के मुकाबले ये कम गरम या तुलनात्मक रूप से ठंडे हैं। सूरज के केंद्र का तापमान डेढ़ करोड़ डिग्री सेल्सियस है — जबकि बाहरी सतह का तापमान सिर्फ 5700 डिग्री है। अंदरूनी कोर का घनत्व सीसे (लेड) के मुकाबले दस गुना अधिक है, वहीं फोटोस्फियर-सतह का घनत्व पृथ्वी पर समुद्र की सतह पर हवा के घनत्व का दस हज़ारवां हिस्सा मात्र है।

दूर से कैसा भी दिखता हो परन्तु सूर्य बिल्कुल भी एक शांत जगह नहीं

1874 से 1976 के दौरान धब्बों का पैटर्न

धब्बों के तितली जैसे पैटर्न: धब्बों के इस पैटर्न को सौर्य बटरफ्लाई डायाग्राम कहते हैं चूंकि ये तितलियों की तरह दिखते हैं। 1874 से 1976, इन सौ सालों में जितने भी सौर्य धब्बे दिखाई दिए उन्हें अक्षांश और समय के एक ग्राफ पर प्लॉट किया गया। ग्राफ से यह बात सामने आई कि धब्बों का हरेक चक्र 25-30 डिग्री उत्तरी या दक्षिणी अक्षांश से शुरू होता है और उसके बाद नए धब्बे क्रमशः मध्य रेखा के करीब पैदा होते हैं। ध्यान दीजिए कि शून्य डिग्री वाली रेखा पर ज़्यादा धब्बे नहीं बनते।

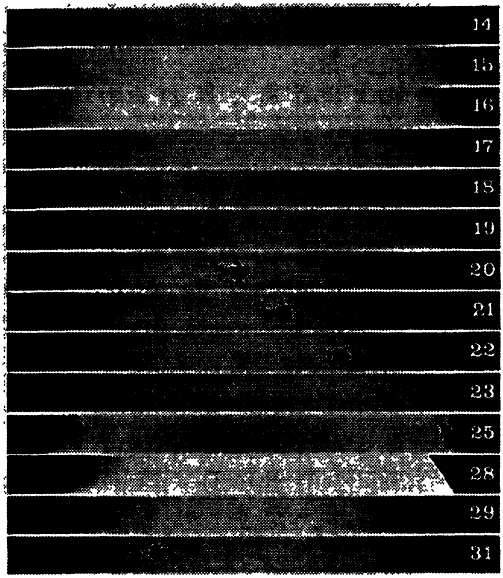

धब्बे की स्थितियां: सूर्य की चकती पर लगातार आगे बढ़ते हुए एक धब्बे के छायाचित्र। ये फोटो मार्च 1966 में खींचे गए थे और दाहिनी ओर के अंक तारीख दर्शा रहे हैं।

है और बीच-बीच में तो वह काफी उग्र हो जाता है। सूर्य की तीव्र उग्रता तब प्रदर्शित होती है जब यह तीव्रता से ऊर्जा को बाहर धकेलता है। ऊर्जा के इस बाहर धकेले जाने और सौर्य धब्बों के बीच अक्सर संबंध पाया गया है।

मुख्यत: यह ऊर्जा 'एक्स' किरणों की बौछार के रूप में बाहर निकलती है। कभी-कभी तो एक्स किरणों की एक भभक में इतनी ऊर्जा होती है जितनी कि सूर्य की संपूर्ण सतह से नहीं निकलती।

एक अन्य तरीके की सौर्य ज्वाला में कोरोना से द्रव्य बाहर फेंका जाता है जिसमें एक बार में 100 खरब किलोग्राम पदार्थ अंतरिक्ष में धकेल दिया जाता है। इस पदार्थ की सौर्य आंधी/हवाएं जब कभी धरती तक पहुंच जाती हैं तो उससे भू-चुंबकत्व भी प्रभावित हो जाता है।

धरती का ऊपरी वातावरण काफी विरल है। सौर्य विकिरण इस ऊपरी परत को लगातार आयनित करता रहता है; और यह आयनित परत जिसे आयनोस्फियर कहते हैं कंबल के समान धरती को चारों तरफ से ढंके हुए है। शॉर्ट वेव रेडियो तरंगों के लिए यह परत आइने का काम करती है यानी उन्हें परावर्तित कर देती है। अंतरिक्ष से आने वाली रेडियो किरणें भी इस परत से टकराकर परावर्तित हो जाती हैं और इस तरह हम फालतू के रेडियो शोर से बचे रहते हैं। दूसरी तरफ रेडियो संचार को कामयाब बनाने में यह आयनो-स्फियर हमारी बड़ी मदद करता है। धरती पर स्थित आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित शॉर्ट वेव रेडियो तरंगें आयनोस्फियर से टकराकर

परावर्तित होती हैं और वापस धरती पर पहुंच जाती हैं। इन्हीं की वजह से हम रेडियो पर संगीत सुन सकते हैं, समाचार सुन पाते हैं।

सौर्य ज्वालाएं और सौर्य धब्बे दोनों ही धरती पर प्रभाव डालते हैं। सौर्य ज्वाला से तीव्र गति के कण निकलते हैं जो ध्रुवीय प्रकाश यानी ऑरोरा (Aurora) की घटनाओं को जन्म देते हैं।

वहीं एक्स-रे भभके के समय हवाई जहाज़ के यात्रिओं को इतना विकिरण मिल जाता है जितना अस्पतालों में एक्स-रे खींचने के दौरान इस्तेमाल किया जाता है। शरीर के लिए बार-बार इतना विकिरण कतई अच्छा नहीं है।

यह भी पता चला है कि आयनो-स्फियर का घनत्व सौर्य धब्बों के चक्र के साथ बदलता है और भू-चुंबकत्व भी। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि धरती पर हिमयुग की शुरुआत तब होती है जब सौर्य धब्बों की संख्या में बहुत कमी हो जाए।

धुआं देखो, आग खोजो

अगर सावधानी न बरती जाए तो तीव्र सौर्य ज्वालाएं विद्युतीय पॉवर ग्रिड को गड़बड़ा सकती हैं जिससे हम अंधेरे में सराबोर हो जाएंगे। इसी तरह धरती के ऊपर घूम रहे उपग्रहों के इलेक्ट्रॉनिक उपकरण भी आवेशित कणों की वजह से ठप्प हो सकते हैं।

एक सौर्य तूफान ने 1989 में एक बड़े पन-बिजली विद्युत यंत्र को क्षतिग्रस्त कर दिया था जिसे दोबारा शुरू करने में पूरे नौ घंटे लगे। अमरीका एवं कनाडा के करीब साठ लाख लोग इससे प्रभावित हुए। इसी तूफान ने अमेरिकी अंतरिक्ष केन्द्र (NASA) के एक उपग्रह को भी ठप्प कर दिया था। इसलिए सौर्य ज्वालाओं की पूर्व घोषणा कर पाना ज़रूरी है – उनके धरती पर पहुंचने से पहले ही।

यह सर्व-विदित है कि सूर्य का चुंबकीय क्षेत्र सौर्य ज्वालाओं की ऊर्जा का स्रोत है। जब भी सौर्य धब्बों के आसपास का चुंबकीय क्षेत्र उमेठने और खिंचने की वजह से टूट-सा जाता है (रबर बैण्ड की भांति), तो हम अपेक्षा कर सकते हैं कि अब सूर्य से विस्फोटक ऊर्जा बाहर निकलेगी।

इसलिए खगोलशास्त्री उन चिन्हों की खोज में लगे रहते हैं जिससे उन्हें पता लग सके कि सौर्य धब्बों के आसपास का चुंबकीय क्षेत्र उमेठा जा रहा है। एक बार यह जानकारी मिले तो वे गणना करते हैं कि सूर्य से द्रव्य किस दिशा में बाहर निकलेगा। यदि दिशा धरती की ओर है तो वे पूर्व चेतावनी देते हैं ताकि आवश्यक कदम उठाए जा सकें।

इस काम के लिए आजकल उपग्रहों को इस्तेमाल किया जा रहा है। इन

सौर धब्बे – कुछ जानी-अनजानी बातें

1. एक सौर चक्र औसतन 11.04 साल का होता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सौर्य धब्बों का हर सौर चक्र 11 साल का ही हो – पिछले तीन सौ साल के अवलोकनों के दौरान देखने में आया है कि एक सौर चक्र 7.3 से लेकर 17.1 साल तक का हो सकता है।
2. अधिकतम सौर गतिविधि के दौरान सूर्य की सतह पर किसी एक समय 100 से ज़्यादा धब्बे भी दिखाई दे जाते हैं और न्यूनतम सौर गतिविधि के दौरान हो सकता है कि हफ्ते भर एक भी धब्बा न दिखाई दे।
3. सन 2000 यानी यह साल इस चक्र में अधिकतम सौर गतिविधि का वर्ष है।
4. किसी एक सौर धब्बे की उम्र दो घंटे से लेकर कुछ महीनों तक की हो सकती है।
5. किसी एक सौर धब्बे का आकार एकाध हज़ार किलो मीटर से लेकर इतना विशाल भी हो सकता है कि उसमें पूरी पृथ्वी समा जाए!
6. किसी भी जोड़ी के दोनों धब्बे लगभग एक ही अक्षांश पर होते हैं, उनका देशांतर ज़रूर फर्क होता है।

उपग्रहों में सूर्य की गतिविधियों को रिकॉर्ड करने और उनपर निगाह रखने के लिए ज़रूरी यंत्र लगाए जाते हैं। इस प्रणाली को 'एस. ओ. एच. ओ.'* के नाम से जाना जाता है। लेकिन सौर्य ज्वालाओं की पूर्वघोषणा संबंधी प्रणालियां अभी शैश्वावस्था में ही है। और चूंकि यह अधिकतम सौर क्रिया-शीलता का वर्ष है इसलिए पॉवर संयंत्रों को संभालने वाले लोग संभावित आपदाओं की तैयारी करने में लगे हुए हैं। साथ ही वैज्ञानिकों की यह कोशिश है कि सौर धब्बों के पास के चुंबकीय क्षेत्रों पर लगातार निगाह रखने से शायद वे समय पर चेतावनी दे पाएं।

** यह एक अंतरिक्ष वेधशाला है जिसे 'सोलर एंड हेलियोस्फेरिक ऑबज़र्वेटरी' यानी 'सोहो' कहा जाता है। सूर्य के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के लिए 1995 में इसे एक ऐसे कक्ष में छोड़ा गया था कि ये पृथ्वी से 15 लाख कि.मी. की दूरी पर सूर्य की ओर रहे।*

टी. बी. वेंकटेश्वरन: सेंटर फॉर डिवेलपमेंट ऑफ इमेजिंग टेक्नॉलॉजी, तिरुवनंतपुरम में विज्ञान संचार के वरिष्ठ व्याख्याता।

अनुवाद: दीपक वर्मा: संदर्भ समूह के सदस्य। अभी वे सेंटर फॉर डिवेलपमेंट ऑफ इमेजिंग टेक्नॉलॉजी में अध्ययन कर रहे हैं।

सौर्य धब्बे, चुंबकीय बल रेखाएं और धब्बों का चक्र

सौर्य धब्बे सूर्य की सतह पर पाए जाने वाले वे क्षेत्र हैं जो अपने आसपास के इलाकों के बनिस्बत कम तापमान पर होते हैं। स्वाभाविक रूप से सवाल उठता है कि सूर्य की सतह पर कुछ जगहों पर ये कम तापमान के क्षेत्र कैसे बन जाते हैं।

दरअसल पृथ्वी की तरह सूर्य का भी अपना चुंबकीय बल क्षेत्र है जो धरती के चुंबकीय क्षेत्र से लगभग सात गुना ज़्यादा शक्तिशाली है। परन्तु यह देखा गया है कि जहां पर भी ये सौर्य धब्बे हैं वहां पर चुंबकीय क्षेत्र बहुत ही ज़्यादा तीव्र है, सतह पर अन्य जगहों की तुलना में लगभग 100 से 2000 गुना ज़्यादा बलशाली। इससे ऐसा लगता है कि सौर्य धब्बों और इस अत्यन्त तीव्र चुंबकीय क्षेत्र के बीच कुछ संबंध ज़रूर होगा।

यह बात सही भी है। सूर्य की सतह पर से घनी चुंबकीय बल रेखाएं कहीं-कहीं सतह से बाहर की ओर निकल/फट आती हैं और फिर स्पेस में से होती हुई कहीं और वापस सतह से जा मिलती हैं। जहां से ये चुंबकीय बल रेखाएं बाहर की ओर आती हैं उस क्षेत्र की गर्म गैसों के इर्द -गिर्द चुंबकीय क्षेत्र का आवरण -सा बन जाने की वजह से यह क्षेत्र सतह से अलग -थलग पड़ जाता है। यहां की गैसें समय के साथ थोड़ी ठंडी पड़ जाती हैं और गर्म गैसों के साथ फिर से संपर्क में न आ पाने के कारण फिर से उतनी गर्म नहीं हो पाती।

इसी वजह से इस इलाके और सूर्य की सतह के अन्य क्षेत्रों के तापमान के बीच कुछ अंतर आ जाता है; सामान्यतः सूर्य का फोटोस्फियर जिसमें ये धब्बे पाए जाते हैं 5770 डिग्री सेंटीग्रेड पर होता है, परन्तु सौर्य धब्बों का तापमान 4500 डिग्री सेंटीग्रेड होता है। आसपास के क्षेत्र की तुलना में ये हिस्से ज़रूर काले दिखाई देते हैं परन्तु अपने आप में ये भी काफी चमकदार होते हैं। अगर सूर्य की सतह को ढंककर केवल सौर्य धब्बों को देखा जाए तो ये चांद की रोशनी से भी दसियों गुना ज़्यादा चमकदार नज़र आएंगे।

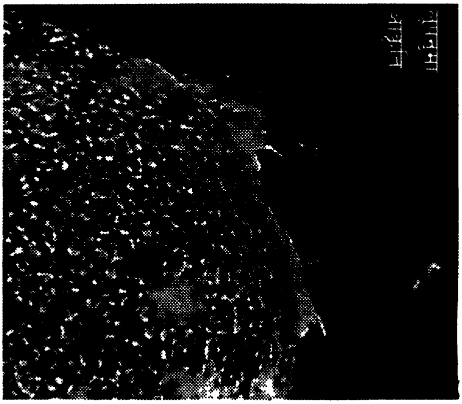

लूप बनना: सूरज की सतह से चुंबकीय बल रेखाओं का ऊपर की ओर उठना और फिर से वापस सतह में घुस जाना। इस प्रक्रिया में एक लूपनुमा आकृति बनती है जो यहां दिखाई दे रही है।

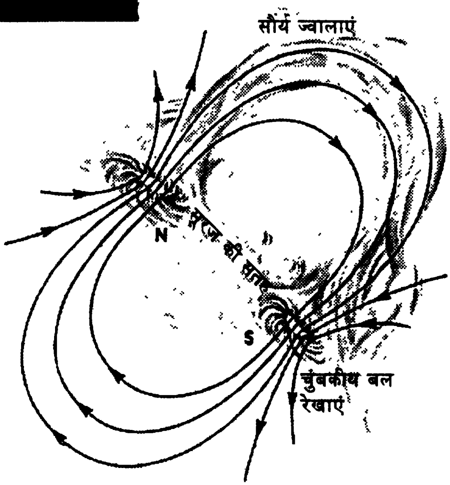

चुंबकीय बल रेखाएं: ऊपर वाले चित्र में जिस चुंबकीय गुणधर्म को दिखाया गया है उसी का रेखा चित्र यहां दिया गया है; जिसमें चुंबकीय बल रेखाएं सतह से बाहर निकल रही हैं और फिर से सतह की ओर वापस लौट आती हैं।

अक्सर सौर्य धब्बे जोड़ी में ही दिखाई देते हैं। यह भी इसी वजह से होता है क्योंकि ये घनी चुंबकीय बल रेखाएं सूर्य की सतह पर एक जगह से बाहर निकलती हैं तो कुछ दूरी पर जाकर वापस सूर्य की सतह में प्रवेश करती हैं। जहां से बाहर निकली वहां एक धब्बा और वापस अंदर घुसी वहां दूसरा धब्बा। इसीलिए ये काले-

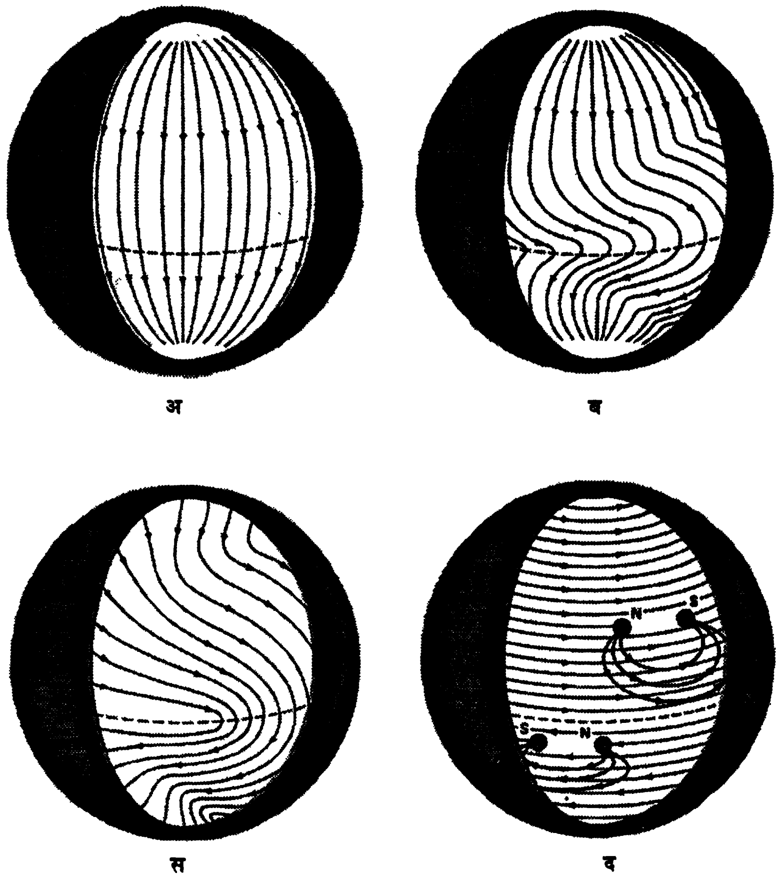

सौर्य धब्बों की उत्पत्तिः अ. फोटोस्फीयर के नीचे चुंबकीय बल रेखाएं होती हैं। ब. चूंकि सूर्य एक गैसीय गोला है इसलिए उसकी अपने अक्ष पर घूमने की गति अलग - अलग अक्षांश पर फर्क होती है। परिणाम यह होता है कि ये बल रेखाएं शून्य डिग्री अक्षांश के समान्तर खिंचने लगती हैं। स. सूर्य के अपनी धुरी के इर्द-गिर्द के कई चक्करों के पश्चात फोटोस्फीयर के नीचे ये बल रेखाएं पूर्व-पश्चिम दिशा में अत्यन्त खिंच जाती हैं। द. ये तनी हुई चुंबकीय बल रेखाएं कहीं-कहीं सतह से फट कर बाहर की ओर एक लूपनुमा आकृति बनाते हुए वापस सौर्य सतह से जा मिलती हैं; जिस वजह से वहां धब्बों की एक जोड़ी बन जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में आगे वाला धब्बा जो ध्रुव दिखाता है, दक्षिणी गोलार्द्ध में आगे वाला धब्बा उससे विपरीत ध्रुव लिए होता है।

गहरे दाग जोड़ी में दिखते हैं जिनके ध्रुव एक-दूसरे से उलटे होते हैं यानी कि अगर एक धब्बा चुंबकीय उत्तरी ध्रुव प्रदर्शित करता है तो उसका जोड़ीदार चुंबकीय दक्षिणी ध्रुव दिखाएगा। लगभग वैसे ही जैसे किसी छड़ चुंबक के एक ध्रुव से चुंबकीय बल रेखाएं निकलकर दूसरे ध्रुव में प्रवेश कर जाती हैं।

आपको शायद जानकारी होगी कि पृथ्वी की तरह सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है। सूर्य के घूमने की दिशा में सौर धब्बों की जोड़ी में जो आगे वाला धब्बा होता है उसे 'आगे वाला जोड़ीदार' कहते हैं, और दूसरे को 'पीछे वाला जोड़ीदार'। मज़ेदार बात है कि एक समय में सूर्य के एक गोलार्द्ध में जितनी भी सौर्य धब्बों की जोड़ियां होती हैं उन सबमें ध्रुवीयता का क्रम एक जैसा होता है; यानी हो सकता है कि सभी 'आगे वाले जोड़ीदार' उत्तर ध्रुव दिखाते हों और सभी 'पीछे वाले जोड़ीदार' दक्षिण ध्रुव दिखाते हों। परन्तु उसी वक्त दूसरे गोलार्द्ध में पाई जाने वाली सौर्य धब्बों की समस्त जोड़ियों में यह क्रम एकदम उल्टा होता है; यानी सभी 'आगे वाले जोड़ीदार' दक्षिण ध्रुव दिखाएंगे और सभी 'पीछे वाले जोड़ीदार' उत्तर ध्रुव।

इसी संदर्भ में एक और अवलोकन का यहां ज़िक्र कर देना उचित होगा। ग्यारह साल के एक सौर चक्र के बाद यह क्रम उलट जाता है अर्थात अगले सौर चक्र में जिस गोलार्द्ध में यह क्रम उत्तर-दक्षिण था वहां दक्षिण -उत्तर हो जाता है। उसके बाद के सौर चक्र में फिर से पलटकर यह पहले जैसा हो जाएगा; यानी इस तरह से देखें तो यह एक 22 साल का चक्र भी चलता रहता है।

(विभिन्न स्रोतों से संकलित)

ज़ुकाम क्यों होता है ?

पिछले अंक में *कुंती परते, होशंगाबाद,* ने सवालीराम से जो सवाल पूछा था उसका जवाब यहां दिया जा रहा है।

सवालः सर्दी-ज़ुकाम क्यों हो जाता है?

जवाबः सर्दी-ज़ुकाम हो जाए तो एकदम मुसीबत ही आ टूटती है। एक के बाद एक छींकों का सिलसिला, नाक का बहना, बुखार, सिरदर्द..... और सब कुछ उल्टा-पुल्टा। और-तो-और सर्दी का यह ज़ुल्म होता है एक छोटी-सी नाक पर।

हमारे शरीर में नाक अनेक महत्वपूर्ण काम करती है। नाक के अंदर कई भाग होते हैं, इन्हीं में से एक होती है म्यूकस (श्लेष्मीय) झिल्ली। झिल्ली में कई रोंएदार रचनाएं होती हैं जिनकी वजह से हम सूंघ सकते हैं। नाक के सभी हिस्सों और श्वसन मार्ग को सूखेपन और संक्रमण से बचाने के लिए उससे एक तरल द्रव का स्राव होता रहता है।

ज़ुकाम की स्थिति में इसी झिल्ली में सूजन आ जाती है और नाक के द्रव की मात्रा भी बढ़ जाती है, जिसकी वजह से सर्दी के दौरान हमारी सूंघने की क्षमता कम हो जाती है।

ज़ुकाम होने का कारण

अब ज़रा ज़ुकाम होने के कारणों पर विचार करते हैं। ज़ुकाम होने का सबसे सामान्य कारण विषाणु (वायरस) होते हैं। ज़ुकाम के लिए ज़िम्मेदार लगभग 40 प्रकार के वायरस ज्ञात हैं। इनमें से कई वायरस तो एक स्वस्थ मनुष्य में भी पाए जाते हैं।

कई प्रयोगों द्वारा ये सिद्ध किया जा चुका है कि थकान, तंत्रिका तंत्र में तनाव, मानसिक चिंता आदि की स्थिति में ज़ुकाम होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। यह जानकर आपको हैरत होगी कि तापमान में गिरावट की वजह से ज़ुकाम नहीं होता। यदि कम तापमान की वजह से ज़ुकाम हो रहा होता तो ध्रुवीय प्रदेशों में रहने वाले लोगो की नाक हमेशा बहती रहती। वैसे ज़ुकाम होना किसी विशेष परिस्थिति से एलर्जी प्रदर्शित करने का भी एक लक्षण है। जैसे किसी-किसी को धूल, विशेष फूलों के परागकण, नमी आदि से एलर्जी

होती है जिसकी वजह से जुकाम हो जाता है।

जुकाम का फैलाव

अगर जुकाम वायरस की वजह से हो तो आमतौर पर किसी एक व्यक्ति को जुकाम होने पर उसके संपर्क में आने वाले कुछ लोगों को जुकाग हो सकता है। हमारे घरों में तो अक्सर ऐसा होता है कि किसी एक को जुकाम हुआ तो वह छींकता जाता है, नाक पोंछता जाता है। एक-दो दिन में घर में और किसी को जुकाम हो जाता है। छींकने, खांसने, बोलने से छोटी-छोटी बूंदों के ज़रिए वायरस एक स्वस्थ व्यक्ति तक पहुंच कर उसे भी जुकाम की गिरफ्त में ले लेते हैं। वैसे सर्दी-जुकाम से ग्रस्त व्यक्ति की इस्तेमाल की हुई चीज़ों से भी जुकाम के फैलाव का डर बना रहता है।

होता ऐसा है कि हमें अचानक ही जुकाम शुरू हो जाता है – गले में खराश, नाक बहना, छींकें, सिरदर्द, हल्का-सा बुखार और बेचैनी-सी लगने लगती है। जुकाम के साथ-साथ यदि तेज़ बुखार (100 डिग्री फैरनहीट से ज़्यादा) या कान, छाती, फेफड़े में दर्द हो तो ये गंभीर बीमारी के लक्षण हो सकते हैं। ऐसे में तुरंत डॉक्टर की सलाह लेना ही बेहतर होता है।

इलाज

वास्तव में सर्दी-जुकाम के लिए कोई भी उपयोगी इलाज नहीं होता। नाक में डालने वाली दवाइयां या इनहेलर केवल नाक/कान के रास्ते में आ रही रुकावट को दूर कर सकते हैं।

एंटीबायोटिक (प्रतिजैविक) दवाइयां लेने से कोई फायदा नहीं है क्योंकि ये जीवाणुओं (बैक्टीरिया) को खत्म करती हैं, जबकि जुकाम वायरस से होता है। इसलिए बार-बार जुकाम में एंटी-बायोटिक लेने से हमारे शरीर को उसकी आदत बन सकती है, और जब ज़रूरत पड़ने पर बैक्टीरिया को खत्म करने के लिए इन्हें लिया जाएगा तब ये दवाइयां कुछ काम नहीं करेंगी। विटामिन-सी से भरपूर चीज़ें लेकर सर्दी को कम किया जा सकता है लेकिन इस का प्रभाव हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग होता है।

जुकाम के लिए सबसे अच्छा उपाय भरपूर आराम करना है। इस दौरान खाने में तरल पदार्थ पीने से भी फायदा होता है। एक बात गौर तलब है कि डॉक्टर जुकाम का इलाज या उसकी अवधि को कतई कम नहीं कर सकता। जुकाम हुआ है तो वह चार-पांच दिन तक रहेगा ही। हां, डॉक्टर अन्य बीमारियों के आक्रमण से बचने में हमारी मदद ज़रूर कर सकता है।

वे दौड़ते, दौड़ते... उड़ने लगे...?

अरविंद गुप्ते

आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को देखना कितना अच्छा लगता है! पक्षियों के रंग -बिरंगे शरीर और मधुर आवाज़ें तो इंसान को हमेशा लुभाती रही हैं। उनकी उड़ान को देखकर ही इंसान में भी उड़ने की चाह पैदा हुई। समय-समय पर कई लोगों ने अपने शरीर पर पिच्छ* लगाकर ऊंचे स्थानों से यह सोचकर छलांग लगा दी कि वे पक्षी के समान उड़ते हुए ज़मीन पर आ जाएंगे। किन्तु नतीजा वही हुआ जो होना था। वे

* इस लेख में पिच्छ और पंख शब्दों का प्रयोग क्रमशः (Feather) और (Wing) के लिए किया गया है। पक्षी के दो पंख होते हैं और उसका शरीर पिच्छों से ढंका रहता है।

सीमेन्ट से भरे हुए बोरे की तरह नीचे आ गिरे। पक्षियों के सरलता से उड़ सकने का कारण यह है कि पक्षी का शरीर एक ऐसी मशीन है जिसे 'जैव विकास' नाम के कुशल कारीगर ने लाखों वर्षों तक तराशकर उड़ान के लिए उत्कृष्ट बनाया है।

तराशा हुआ शरीर

पक्षी के शरीर का आकार ऐसा (स्ट्रीमलाइन्ड) होता है कि उड़ते समय पक्षी को हवा के प्रतिरोध का कम-से-कम सामना करना पड़ता है। पनडुब्बी और हवाई जहाज़ का आकार भी इसी तरह का होता है। पक्षी के शरीर का भार कम होने के कई कारण हैं। उनके शरीर की सभी हड्डियां बिल्कुल हल्की और खोखली होती हैं। कई बड़ी हड्डियों के भीतर तक हवा पहुंचाने की व्यवस्था होती है ताकि उन्हें और भी हल्का किया जा सके। मुंह से दांतों की छुट्टी हो गई है और जबड़े एक हल्की किन्तु कड़ी चोंच में परिवर्तित हो गए हैं।

उड़ने के लिए आवश्यक बहुत अधिक ऊर्जा के उत्पादन के लिए पक्षियों में चयापचय (मेटाबोलिज़्म) की दर अन्य जंतुओं की तुलना में बहुत अधिक होती है। चयापचय की तेज़ दर को बनाए रखने के लिए पक्षियों को अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। उनके फेफड़ों का विकास इस आवश्यकता के अनुरूप हुआ है। फेफड़ों का आकार शरीर के अनुपात में काफी बड़ा तो होता ही है, उन से वायुकोष नामक शाखाएं निकली रहती हैं। कुछ वायुकोष शरीर के आंतरिक अंगों के बीच में फैले रहते हैं तो कुछ बड़ी हड्डियों के भीतर पहुंचते हैं। वायुकोषों की उपस्थिति से कई फायदे होते हैं। एक तो फेफड़ों की हवा ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है। दूसरे, पक्षी के शरीर का आपेक्षिक घनत्व कम हो जाने से वह काफी हल्का हो जाता है। तीसरा फायदा यह होता है कि शरीर के ऊंचे तापक्रम के कारण जिन अंगों को हानि पहुंचने की संभावना होती है, वायुकोष की शाखा उनके पास से गुज़रती है ताकि वायुकोष में बहती हवा के कारण उनका तापक्रम कम हो सके। इसका एक उदाहरण वृषण है।

ऑक्सीजन की बढ़ी हुई मात्रा को शरीर की सब कोशिकाओं तक पहुंचाने के लिए यह ज़रूरी है कि शरीर में रक्त का संचार तेज़ी से हो। चूंकि शरीर में रक्त के संचरण का काम हृदय करता है, पक्षियों का हृदय बहुत तेज़ गति से धड़कता है। मनुष्य का हृदय एक मिनिट में औसतन 72 बार धड़कता है। नीचे तालिका में दी गई पक्षियों की धड़कन की दर देखने से दोनों में अंतर समझ में आता है।

पक्षी	औसत हृदय धड़कन (प्रति मिनट)
कबूतर	244
कौआ	342
गौरैया	460
रॉबिन	570
केनरी	1000

चयापचय की ऊंची दर के कारण पक्षियों के शरीर का तापक्रम अन्य जंतुओं के शरीर के तापक्रम की तुलना में अधिक होता है। जहां मनुष्य में यह 37 डिग्री सेल्सियस होता है वहीं पक्षियों में 40 डिग्री से 42 डिग्री सेल्सियस होता है। ऊंचे तापक्रम को बनाए रखने के लिए पक्षियों के शरीर पर पिच्छों के रूप में बहुत अच्छे तापरोधी आवरण का विकास हुआ है। ये पिच्छ पक्षी को गर्मी, सर्दी और वर्षा से तो बचाते ही हैं, उड़ान भी इन्हीं के कारण संभव हो पाती है। पक्षियों के अतिरिक्त जंतुओं के अन्य किसी समूह में पिच्छ नहीं पाए जाते।

उड़ते समय पक्षी को अपने पंख लगातार ऊपर-नीचे हिलाते रहना पड़ता है। इसके लिए वक्ष पर स्थित मांसपेशियां बहुत बड़ी और शक्तिशाली होती हैं। इन बड़ी मांसपेशियों को सहारा देने के लिए अंशमेखला (पेक्टोरल गर्डल) भी बहुत बड़ी और मज़बूत होती है।

उड़ने वाले जंतु के आंतरिक अंग यदि बिखरे हुए और ढीले-ढाले हों तो वे उड़ने में बाधा बन सकते हैं। अतः पक्षियों के आंतरिक अंग (आहारनाल, यकृत आदि) काफी कम जगह में व्यवस्थित होते हैं ताकि वे हिलें-डुलें नहीं। इसी कारण पक्षियों में द्रव से भरी हुई थैली यानी मूत्राशय नहीं पाया जाता। इनका मूत्र यूरिया के घोल के रूप में न होकर ठोस यूरिक अम्ल के रूप में होता है। यही यूरिक अम्ल पक्षी की बीट का सफेद भाग होता है।

उड़ने वाले जंतु की दृष्टि बहुत पैनी और कार्यक्षम होना ज़रूरी है। पक्षी की आंख एक अद्भुत अंग है जो दूरदर्शी यंत्र (टेलीस्कोप) के समान दूर तक देख सकती है और पल भर में सूक्ष्मदर्शी यंत्र (माइक्रोस्कोप) में और फिर सूक्ष्मदर्शी से दूरदर्शी में बदल सकती है।

सरीसृपों से पक्षियों का विकास

हैरानी की बात यह है कि इतनी सारी खूबियों से लैस पक्षियों का विकास ज़मीन पर रेंगने वाले सरीसृप (रेप्टीलिया) वर्ग के जंतुओं से हुआ है। यदि हम सांप, छिपकली, मगर, कछुआ जैसे सरीसृप जंतुओं को देखते हैं तो यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि इन जैसे जंतुओं या इनके संबंधियों से पक्षियों जैसे सुंदर, तेज़

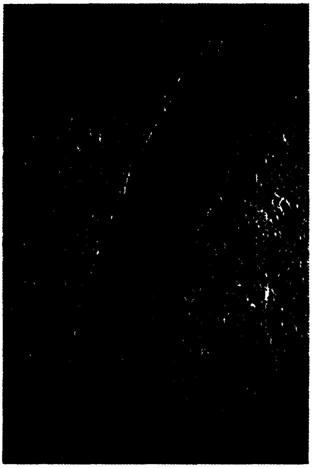

पंख की छाप: बावेरिया (जर्मनी) की चूनापत्थर खदान में खुदाई के दौरान मिली एक पिच्छ की छाप वाला जीवाश्म। इसकी उम्र लगभग 15 करोड़ साल आंकी गई।

उड़ने वाले और मधुर आवाज़ वाले जंतु विकसित हुए हैं। किंतु यदि हम आज हमारे आसपास पाए जाने वाले सरीसृप जंतुओं में पक्षियों के पूर्वजों को खोजने का प्रयास करेंगे तो यह कुछ ऐसी ही बात होगी कि आजकल पृथ्वी पर पाए जाने वाले बंदरों में मनुष्य के पूर्वजों को खोजना।

पक्षियों के विकास की गुत्थी सुलझाने में सबसे बड़ी समस्या यह है कि इनकी हड्डियां हल्की और नरम होने के कारण उनका जीवाश्म के रूप में सुरक्षित रहना कठिन होता है। इसी प्रकार मृत पक्षी के पिच्छ भी जल्दी गलकर नष्ट हो जाते हैं। यदि पक्षी का शरीर ऐसी मिट्टी में दफन हो जाए जिसके कण महीन हों और कणों के बीच ऑक्सीजन न हो तभी उसके जीवाश्म के रूप में सुरक्षित रहने की संभावना होती है।

फिर यह कैसे पता चला कि पक्षियों का विकास सरीसृप वर्ग के जंतुओं से हुआ? इस रोचक, रोमांचक और रहस्यमय कहानी को जानने के लिए हमें जर्मनी के बावेरिया प्रांत के सोलन होफन गांव में स्थित चूने के पत्थर की खदानों में जाना होगा। यह पत्थर बढ़िया किस्म का होने के कारण इसकी मांग बहुत अधिक है और इसे सदियों से इन खदानों से निकाला जाता रहा है। इन चट्टानों की परतें आसानी से खुल जाती हैं और इनमें दबे हुए जीवाश्म प्रायः सतह पर आ जाते हैं। सन् 1860 में इन चट्टानों में लगभग 7 से.मी. लंबा एक पिच्छ मिला। इस पिच्छ ने जीव विज्ञान की दुनिया में सनसनी फैला दी। सनसनी का कारण यह था कि ये चट्टानें 15 करोड़ वर्ष पहले बनी थीं और उस समय पृथ्वी पर पक्षियों का कहीं अता-पता ही नहीं था। आखिर पिच्छ था तो पक्षी भी ज़रूर होगा, किन्तु उस युग में यह किस प्रकार का पक्षी रहा होगा? खैर, वैज्ञानिकों ने उस अकेले पिच्छ के आधार पर ही पक्षी की उस प्रजाति का नाम रख दिया 'आर्कियोप्टेरिक्स'

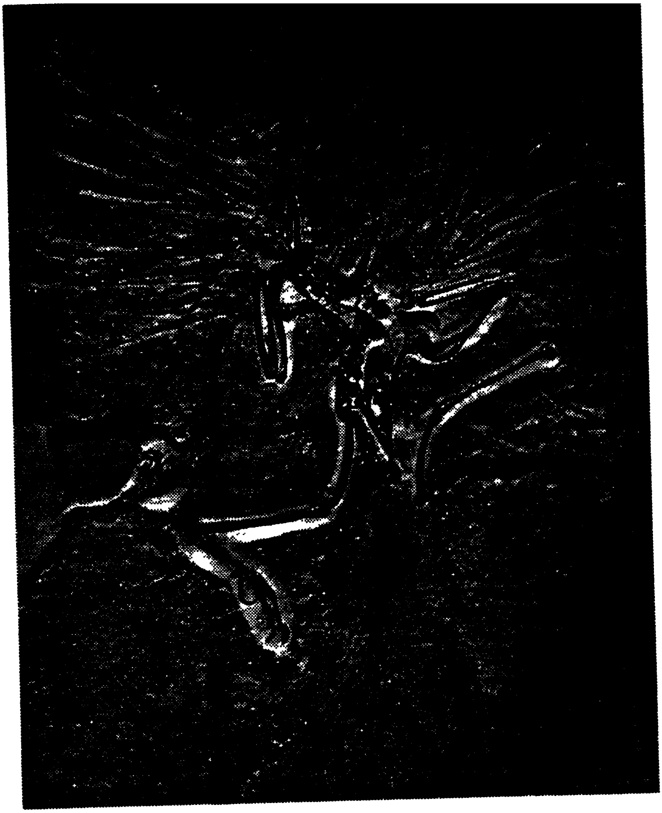

आर्कियोप्टेरिक्स का जीवाश्म: सन् 1861 में बावेरिया में मिला यह जीवाश्म ही वह पहली कड़ी साबित हुआ जो डायनोसोर और पक्षियों के बीच के अंतरसंबंधों को बताता था। इन शुरुआती पंछियों के बारे में माना जाता है कि इनकी गिरगिट की तरह लंबी पूंछ होती थी और मज़बूत जबडों में दांत होते थे। और ये बहुत थोड़ी दूरी तक उड़ान भर पाते थे। इस जीवाश्म की आयु 15 करोड़ साल आंकी गई।

यानी प्राचीन पिच्छ।

इस घटना के एक वर्ष बाद पास की एक अन्य खदान में आर्कियोप्टेरिक्स का लगभग पूरा कंकाल मिला। इस कंकाल के चारों ओर उसके पिच्छों के निशान चट्टान पर बने हुए थे। पिच्छों की उपस्थिति के कारण यह तो निर्विवाद था कि यह जंतु था तो पक्षी किन्तु यह पूरी तरह आज के पक्षियों के समान भी नहीं था। उसमें सरीसृप

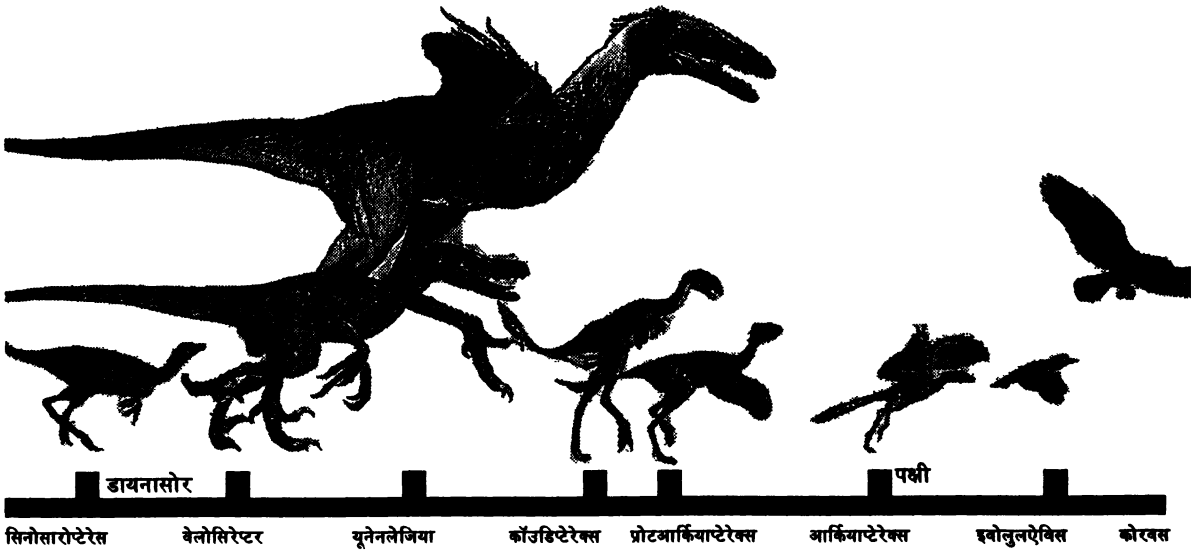

पक्षियों के विकास का रास्ताः ऊपर के रेखाचित्र में सरीसृप से पक्षियों के विकास को दिखाने की एक कोशिश है। इसमें एक छोर पर डायनोसोर हैं जिनमें क्रमिक विकास होता गया और वे आरकियोप्टेरिक्स के रूप में सामने आए जिन्हें साफतौर पर पक्षी कहा जा सकता था। यहां से पक्षियों का स्वतंत्र विकास होता है।

वर्ग के कई लक्षण थे। उसकी लंबी पूंछ में कई मनके थे जैसे छिपकलियों की पूंछ में पाए जाते हैं। अगली टांगें पंखों के रूप में तो तब्दील हो चुकी थीं किन्तु इन पर और पिछली टांगों पर नाखून थे।

इसके बाद आर्कियोप्टेरिक्स के दो और कंकाल मिले जिनसे पता चला कि इस जंतु के जबड़ों में वैसे ही दांत थे जैसे सरीसृपों में पाए जाते हैं। टांगों, सिर ओर गर्दन के ऊपरी भाग को छोड़ शेष शरीर पिच्छों से ढंका था।

ये सब घटनाएं चार्ल्स डार्विन की पुस्तक 'दी ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़' के प्रकाशन के दो वर्षों के भीतर हुईं। इस पुस्तक में डार्विन ने विकासवाद का वह क्रांतिकारी सिद्धांत प्रस्तुत किया था जिसने जीवशास्त्र की दिशा ही बदल दी। इसके अनुसार एक समूह के जंतुओं से दूसरे समूह के जंतुओं का विकास होता है। रोचक बात यह है कि डार्विन के कट्टर अनुयायी टॉमस हक्सले ने सरीसृपों और पक्षियों के अध्ययन के आधार पर कहा था कि पक्षियों का विकास सरीसृपों से हुआ है और इन दोनों समूहों को जोड़ने वाली कड़ी का जीवाश्म कभी-न-कभी प्राप्त होगा। उसने इस जंतु की शरीर

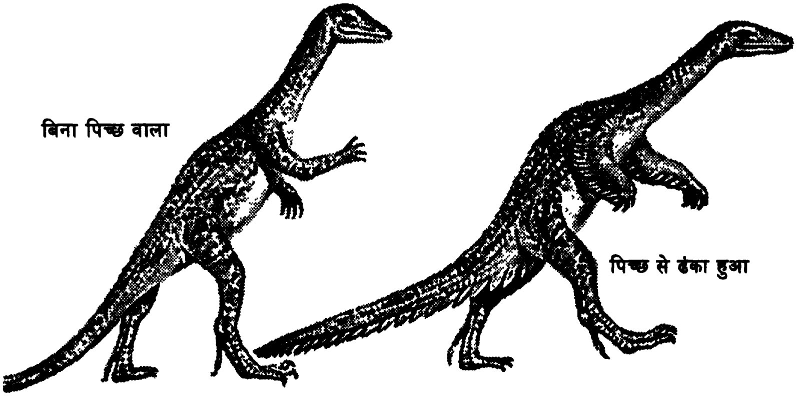

डायनोसोर में बदलाव: अब लगभग इस बात को खासी मान्यता मिल चुकी है कि पक्षियों का सीधा संबंध कुछ खास प्रजातियों के डायनोसोर से है। दक्षिण आफ्रिका से मिले एक छोटे डायनोसोर का शरीर पिच्छ से ढंका हुआ था। जीवाश्म के आधार पर यहां बिना पिच्छ वाला और पिच्छ से ढंका हुआ डायनोसोर दिखाया गया है। हालांकि ऐसा लगता है कि इस समय तक उनमें उड़ने की क्षमता नहीं थी।

आर्कियोप्टेरिक्स का काल्पनिक चित्रः आर्कियोप्टेरिक्स के जीवाश्म काफी मिले हैं लेकिन पक्षी कैसा दिखता होगा इसका अनुमान लगाने के लिए चित्रकार की कल्पना ही काम आती है। एक चित्रकार ने जीवाश्मों के आधार पर आर्कियोप्टेरिक्स की यह कल्पना की है जिसमें पक्षी के मुंह में दांत, पंखों पर एक जोड़ी पंजों की मौजूदगी आदि अहम पहलू हैं।

रचना का विवरण भी दिया था जो आर्कियोप्टेरिक्स से काफी मिलता है।

नई बहसः किस सरीसृप से

आर्कियोप्टेरिक्स की खोज ने यह तो निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर दिया कि पक्षियों का विकास सरीसृप जंतुओं से ही हुआ है, किन्तु अब वैज्ञानिकों में बहस इस बात को लेकर छिड़ गई कि सरीसृप वर्ग के कौन-से जंतुओं से पक्षियों का विकास हुआ है। हक्सले का मत था कि डायनोसोर समूह के जंतु ही पक्षियों के पूर्वज हो सकते हैं। आज से कोई 10-20 करोड़ वर्षों पहले इस समूह के जंतु अन्य सब जंतुओं की तुलना में प्रबल थे और बहुत बड़ी संख्या में मौजूद थे। ये छोटे, बड़े, शाकाहारी, मांसाहारी, हवा में उड़ने वाले, पानी में रहने वाले, ज़मीन पर रहने वाले और पिछली दो टांगों के बल खड़े होकर सरपट दौड़ने वाले, आदि सभी प्रकार के होते थे और सभी महाद्वीपों पर पाए जाते थे।

1926 तक अधिकांश वैज्ञानिक हक्सले से सहमत थे, किन्तु इसी साल गेरहार्ड हाइलमन नामक वैज्ञानिक की

'पक्षियों की उत्पत्ति' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें कुछ प्रमाणों के आधार पर हाइलमन ने यह तर्क दिया कि पक्षी और डायनोसोर आपस में संबंधी तो हो सकते हैं, किन्तु यह कहना गलत होगा कि पक्षियों की उत्पत्ति डायनोसोरों से हुई है। इन दोनों समूहों का विकास ऐसे सरीसृप जंतुओं से हुआ है जो पिछली टांगों के बल न केवल धरती पर सरपट दौड़ते थे अपितु पेड़ों पर भी चढ़ जाते थे और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग लगाते थे। जैसे-जैसे ये छलांगें लम्बी होती गईं, इन्होंने उड़ानों का रूप ले लिया और उड़ान में सहायता करने के लिए शरीर पर पिच्छों का विकास हुआ; और इस प्रकार हुआ पक्षियों का विकास।

चीन में: जीवश्मों का खज़ाना

इसके बाद वैज्ञानिक जगत में हाइलमन का पलड़ा भारी हो गया और लगभग आधी शताब्दी तक यही स्थिति बनी रही। पिछले 6-7 वर्षों में चीन के उत्तर-पूर्वी लियाओनिंग प्रांत से जीवाश्म का ऐसा खज़ाना प्राप्त हुआ है जिससे पक्षियों के विकास पर पड़ा हुआ परदा कुछ हद तक हटा है। कोई 12 करोड़ वर्ष पहले इस भाग में स्थित झीलें विविध प्रकार के जीवों से भरी पड़ी थीं। अचानक पूर्व में स्थित भीतरी मंगोलिया में एक के बाद एक भीषण ज्वालामुखी विस्फोट हुए। इनसे निकली विषैली गैसें जब लियाओनिंग प्रांत पहुंचीं तो इनके प्रभाव से सारे जंतु तुरन्त मर गए और फिर ज्वालामुखी से निकली राख में दफन हो गए।

इन जंतुओं में कई डायनोसोर समूह के थे। इनमें से कुछ के शरीर पर पिच्छ होने के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। डायनोसोर और पिच्छ? है तो अनोखी बात, किन्तु यह सच है कि थीरोपॉड समूह के, पिछली टांगों के बल चलने वाले इन मांसाहारी जंतुओं के शरीर पर पिच्छ थे। इस समूह का सबसे भयानक जंतु टायरेनो-सॉरस रेक्स था जो 45 फीट लंबा और 20 फीट ऊंचा होता था। खैर, टायरेनोसॉरस तो उत्तरी अमेरिका में रहता था, किन्तु लियाओनिंग प्रांत में पाए जाने वाले थीरोपॉड डायनोसोर छोटे आकार के होते थे। इन जंतुओं का उड़ने से दूर तक कोई संबंध नहीं था। फिर इन के शरीर पर पिच्छों का क्या औचित्य हो सकता है?

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि अन्य सरीसृप जंतुओं की तुलना में डायनोसोर के शरीर का तापक्रम काफी ऊंचा यानी लगभग स्तनधारियों के शरीर के तापक्रम के बराबर होता है। शरीर के इस ऊंचे तापक्रम को बनाए रखने के लिए उन्हें शायद शल्कों से बेहतर तापरोधी आवरण की ज़रूरत थी।

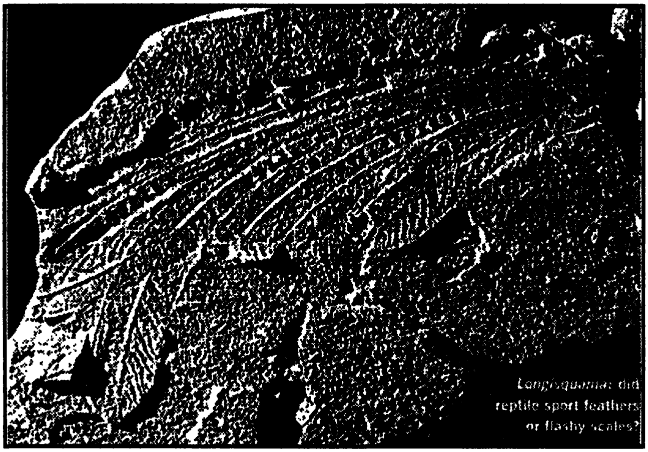

Longisquama: did reptile sport feathers or flashy scales?

मुमकिन है ग्लाइड करते-करते उड़ने लगे हों

पिछले कुछ सालों में यह परिकल्पना कि पक्षियों का विकास डायनोसोर से हुआ है, विवाद के घेरे में आ गई है। यह बात तब उठी जब जीवाश्म वैज्ञानिकों द्वारा यह दावा किया गया कि उन्हें आर्कियोप्टेरिक्स से भी सात करोड़ साल पहले के एक छिपकलीनुमा सरीसृप 'लोंगिस्क्यूमा' के शरीर पर पिच्छ थे यह दिखाता हुआ जीवाश्म मिला है। इस जीवाश्म के बारे में जानकारी तो बहुत साल से थी; लगभग तीस साल पहले रूस में इसकी खोज हुई थी परन्तु विवाद का विषय यह है कि उसमें दिखने वाली धारीदार पट्टियां पिच्छ हैं या कोई और ही रचना है।

इस जीवाश्म में इस जीव के शरीर का केवल आगे का पांच से.मी. हिस्सा दिखाई देता है। साथ ही लगभग एक से.मी. चौड़ी और चौदह से.मी. लंबी 6 से 8 जोड़ी रचनाएं हैं जिन्हें बहुत सारे जीव विज्ञानी स्पष्ट तौर पर पिच्छ मानते हैं। उनका कहना है कि इनके बीच की शाफ्ट पोली है और उनमें से दोनों तरफ रचनाएं निकलती दिखाई देती हैं। यह ज़रूर है कि आज के पक्षियों के पिच्छ की तुलना में ये कुछ फर्क हैं।

दूसरी ओर कुछ अन्य जीव वैज्ञानिकों का मत है कि ये रचनाएं पारदर्शी हैं जबकि अभी के पक्षियों में पाए जाने वाले पिच्छ पारदर्शी नहीं होते। उनका यह भी कहना है कि दरअसल ये विशेष किस्म के शल्क हैं जिनमें खूब

सारी झुर्रियां पड़ी हुई हैं और उनके बीच में एक मध्य शिरा जैसी रचना होने की वजह से वे पिच्छ जैसे नज़र आते हैं।

जो लोग मानते हैं कि ये पिच्छ ही हैं, उनका कहना है कि यह जीव इन्हें खोल कर बखूबी ग्लाइड कर पाता होगा। जबकि विपरीत मत रखने वालों का मानना है कि ये सरीसृप इन्हें मादा को रिझाने या किसी को डराने के लिए इस्तेमाल करते होंगे।

चाहे ये रचनाएं पिच्छ हों या न हों, इतना तो पक्का है कि इनका विकास सरिसृपों के शल्क से हुआ और सरीसृपों के करोड़ों सालों के इतिहास में ऐसी कोई और रचना देखने को नहीं मिलती।

(1 जुलाई, 2000 के 'न्यू सायंटिस्ट' में छपे लेख पर आधारित)

संभव है कि उनके शरीर पर मौजूद पिच्छ उनके शरीर के तापक्रम को बरकरार रखने में मदद करते होंगे, किन्तु अच्छे तापरोधी होने के अलावा पिच्छों में एक विशेषता यह थी कि वे लंबी छलांग लगाते समय शरीर का संतुलन बनाए रखने में विशेष सहायता करते थे।

लंबी छलांग लगाते-लगाते इन जंतुओं ने उड़ना शुरू कर दिया होगा और साथ ही उनके शरीर में वे सारे परिवर्तन होने लगे जिनके कारण ज़मीन पर दौड़ने वाले मांसाहारी डायनोसोरों से कालातांर में मोर, बाज़, तोता और मैना जैसे पक्षी विकसित हो पाए।

यह संभव है कि भविष्य में नए जीवाश्मों की खोज हो और पक्षियों के विकास की कहानी कोई नया मोड़ ले ले। किन्तु अभी तो यह एक सुखद विचार है कि किसी समय दूसरे जंतुओं को आतंकित करने वाले डरावने डायनोसोर पूरी तरह विलुप्त नहीं हुए हैं और आज उनसे बहुत ही फर्क परन्तु फिर भी उनके वंशज पक्षियों के रूप में हमारे आसपास मौजूद हैं।

अरविंद गुप्ते: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। विज्ञान लेखन में रुचि।

क्या बताती हैं लोक कथाएं?

कमलेशचंद्र जोशी

लोक कथाएं हमारे आम जीवन में सदियों से रची-बसी हैं। इन्हें हम अपने बड़े-बूढ़ों से बचपन से ही सुनते आ रहे हैं। लोक कथाओं के बारे में यह भी कहा जाता है कि बचपन के शुरुआती वर्षों में बच्चों को अपने परिवेश की महक, सोच व कल्पना की उड़ान देने के लिए इनका उपयोग ज़रूरी है। हम यह भी सुनते हैं कि बच्चों के भाषा के विकास के संदर्भ में भी इन कथाओं की उपयोगिता महत्वपूर्ण है। ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन लोककथाओं के विभिन्न रूपों में हमें लोक जीवन के तत्व मिलते हैं जो बच्चों के भाषा विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं। अगर हम अपनी पढ़ी हुई लोक कथाओं को याद करें तो सहजता से हमें इनके कई उदाहरण मिल जाते हैं।

एक चिड़िया को पेड़ के कोटर में एक गेंहू का दाना मिलता है। उस दाने को निकालने के लिए वह चिड़िया बढ़ई, लोहार, राजा आदि कई लोगों के पास जाती है। इस कहानी में खास बात यह होती है कि जिसके भी पास वह जाती है उसे वह अपने साथ पहले घटी घटना को ज़रूर बताती है। जब हम ऐसी कहानी सुना रहे होते हैं तो बच्चों से हमारी यह अपेक्षा रहती है कि पहले घटी घटना को वे ज़रूर दोहराएं। बच्चे भी घटना को याद रखते हुए साथ-साथ मज़े से दोहराते हैं।

इस तरह कथा सुनाने की इस प्रक्रिया में बच्चे इन घटनाओं को एक क्रम में रखकर देखते हैं। इन क्रमिक घटनाओं में एक तर्क होता है जो बच्चों के मनोभावों से मिलता-जुलता है।

इस चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए हम तीन लोक कथाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। पहली मलयालम लोक कथा है 'ईचा-पूचा', दूसरी मराठी लोक कथा है – 'एक्की-दोक्की' तथा तीसरी मणिपुरी लोक कथा है – 'कौन बनेगा निंगथऊ'। ये तीनों लोक कथाएं, तीन अलग-अलग चित्रात्मक बाल पुस्तकों के रूप में तूलिका पब्लिशर्स, चेन्नई से प्रकाशित हुई हैं।

ईचा पूचा

आइए मलयालम लोक कथा 'ईचा पूचा' से शुरू करें। सबसे पहले यह जानना ज़रूरी है कि मलयालम में मक्खी को ईचा तथा बिल्ली को पूचा कहते हैं। यह लोक कथा, एक मक्खी और बिल्ली के बारे में है। वे दोनों जिगरी दोस्त होती हैं और एक दिन कंजी बनाती हैं। लेकिन उसे खाने के लिए उनके पास कोई चम्मच नहीं होता। ईचा कहती है, "पूचा तुम कंजी की

रखवाली करो। मैं अभी कटहल का पत्ता लेकर आती हूं।" और ईचा उड़ जाती है। पूचा ने कंजी की रखवाली का वचन तो दे दिया लेकिन कंजी की रखवाली करते-करते उसकी भूख बढ़ जाती है; और वह सारी-की-सारी कंजी पी जाती है जिससे उसका पेट बेतहाशा फूल जाता है।

आगे हम पाते हैं कि पूचा का पेट इतना फूल गया कि उसका चलना दूभर हो जाता है और वह बहुत ही धीरे-धीरे चल पाती है। पेट फूलने वाली घटना पर गौर करें तो हम पाते हैं कि यह एक ऐसा बिंदु है जो बच्चों की कल्पनाओं से खूब मेल खाता है। इस तरह का पाठ व ऐसे चित्र बच्चे खूब पसंद करते हैं। ऐसी स्थितियों में उन्हें अपनी कल्पना व तर्क गढ़ने के खूब मौके मिलते हैं कि उसका पेट कितना फूला होगा, फूले पेट के साथ वह कैसे चलती होगी आदि, आदि? लोक कथा का यह एक महत्वपूर्ण तत्व है जो बच्चों को अपनी तरह से सोचने के काफी मौके देता है।

इसके साथ आगे की कहानी में होता यह है कि पूचा अपना फूला पेट कम करने के उपाय पता करने के लिए आसपास के लोगों से पूछताछ करती है। सबसे पहले उसने छप्पर में बंधी गाय से पूछा तो उसने कहा, "मेरी देखभाल करने वाले लड़के से पूछो।" इसी तरह से कहानी आगे बढ़ती रहती है। लड़का कहता है, "मुझे नहीं मालूम, मेरी छड़ी से पूछो।" छड़ी कहती है, "पेड़ से पूछो।" पेड़ कहता है, "पक्षी से।" फिर पक्षी कहता है, "शिकारी से।" और शिकारी कहता है, "मेरे चाकू से।" चाकू गुस्सा करके कहता है, "अभी बताता हूं कि कैसे ठीक होगा तेरा पेट।" और पूचा भाग जाती है। भागकर वह ईचा के पास पहुंचती है और देखती है कि ईचा एक कटहल का पत्ता घसीटते हुए ला रही है।

इस भाग-दौड़ में उसका पेट अपने आप ही ठीक हो जाता है और कहानी समाप्त हो जाती है। इस पूरे घटनाक्रम में कुछ बातें गौर करने लायक हैं। पहली बात तो यही है कि इस कहानी से जुड़ी सारी चीज़ें बच्चों के आसपास के वातावरण से हैं और उनका आपसी संबंध भी उजागर करती हैं। इस उदाहरण से समझ में आता है कि बच्चों के लिए उनके आसपास के परिवेश से जोड़ते हुए सहज रूप से एक कहानी की रचना कैसे हो सकती है?

इसके अलावा यह बात भी स्पष्ट है कि इस तरह की लोक कथाओं के अंत में कोई उपदेश नहीं निकलता। यह कतई ज़रूरी नहीं है कि बच्चों को केवल ऐसी कहानियां पढ़ाई जाएं जो उपदेश से भरी हों। हम बच्चों के लिए कहानी की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण मानते हैं – जहां बच्चों को मज़ा आए तथा वे अपनी दुनिया रच सकें। ऐसी कहानियों में यह भी संभावना नज़र आती है कि अगर इस कहानी को समाप्त न करें तो बच्चे भी इसे खुद आगे बढ़ा सकते हैं। खुद कहानी बनाने में बच्चों का तर्क भी समाहित रहेगा और हर बच्चे का अपना तरीका होगा। बच्चों के लिए कैसी कहानियों का चयन किया जाए उसमें यह पहलू काफी महत्वपूर्ण है।

एक और बात भी गौर करने लायक है कि इस तरह की कहानी केवल मलयालम में ही नहीं है। ऐसी कई कहानियां हमारी अन्य भाषाओं व बोलियों में भी विद्यमान हैं। चाहे उनके पात्रों में थोड़ा बदलाव ज़रूर हो लेकिन इन सब में मूल ढांचा एक-सा ही होता है।

कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि इस प्रकार की वर्णनात्मक लोक कथाएं, बच्चों की भाषा विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसके साथ ही उन्हें घटनाओं का दोहराव भी अच्छा लगता है। यह दोहराव उन्हें कहानी सुनने के लिए प्रेरित करता है। इसको हम ठीक उस तरह देख सकते हैं जैसे बच्चों की कविताओं में लय व तुक का महत्व होता है। वहां यह ज़्यादा महत्वपूर्ण नहीं होता कि इस लय व तुक का अर्थ क्या निकलता है।

एक्की दोक्की

अब एक फर्क किस्म की लोक कथा को देखें जिसमें नसीहत दी गई है। यह एक मराठी लोक कथा है – 'एक्की दोक्की'। यह कहानी एक केशवाली और दो केशवाली बहनों यानी कि एक्की और दोक्की की है। एक्की के सिर पर एक बाल है। दोक्की के सिर पर दो बाल हैं इसलिए दोक्की घमण्डी है। उसकी मां सोचती है कि दोक्की

बहुत सुंदर है। दोक्की इसलिए अपनी बहन पर रौब भी जमाती रहती है। एक दिन एक्की इतनी ज़्यादा तंग आ गई कि वह घर से भाग गई।

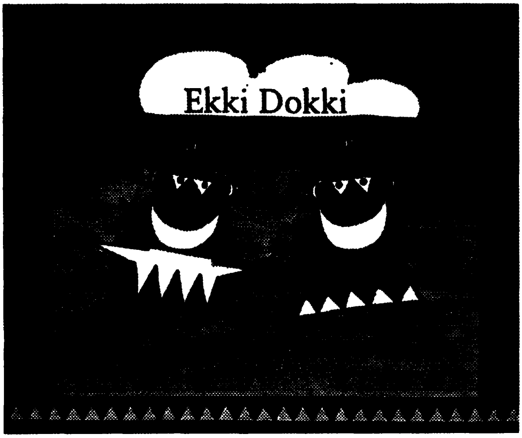

इस कहानी में पहली बात यह समझ में आता है कि कहानी, समाज में इस मिथक को लेकर आगे बढ़ती है कि घने बालों वाली लड़कियां ज़्यादा सुंदर होती हैं और घमण्डी भी। इस कहानी की कथा हमारे जेहन में एक तरह की रूढ (स्टीरियोटाइप) छवि बनाती है। इसलिए यह भी सवाल उठता है कि बच्चों के साथ उपयोग करने के लिए हम किस तरह की लोक कथाओं का उपयोग करें।

आगे जब वह जंगल में पहुंचती है तो मेंहदी की झाड़ी चिल्लाती है, "मुझे पानी पिला दो।" एक्की उसे पानी पिलाती है जिस पर मेंहदी की झाड़ी उसे धन्यवाद देती है और कहती है, "मैं तुम्हारी यह मदद हमेशा याद रखूंगी।" एक्की आगे बढ़ जाती है। फिर उसे एक मरियल-सी गाय मिलती है। गाय कहती है, "मुझे भूख लगी है, खाना खिला दो।" तो एक्की जंगल से घास-फूस इकट्ठा कर उसे खिलाती है। गाय भी उसे धन्यवाद देती है और वह भी कहती है, "मैं तुम्हारी मदद याद रखूंगी।" इस तरह कहानी आगे बढ़ती है।

यहीं से हमें कहानी का एक ढांचा समझ में आने लगता है। मन-ही-मन हम अनुमान लगाते हैं कि अब बाद में ये सब एक्की की मदद करेंगे। ऐसा पूर्वानुमान इसलिए भी लगाते हैं क्योंकि ऐसी बहुत-सी लोक कथाएं हम पढ़ते रहे हैं। परन्तु इस तरह की कथा बच्चों को कैसी लगती है यह उनके साथ काम करते हुए परखकर देखना चाहिए; क्योंकि हमारे वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता। मुझे ऐसा लगता है कि इस तरह की कथाएं शायद पढ़ने वाले के लिए एक 'सेट पैटर्न' की लोक कथा प्रतीत होती होंगी क्योंकि इसमें बच्चों का अपना तर्क और उनकी कल्पना इतनी मुखर नहीं हो पाती और कहानी

के कथानक में ऐसा कुछ नहीं है जिससे उन्हें मज़ा आए व रुचि बनी रहे। ऐसी कथाएं बच्चों को एक ही धरातल पर सोचने पर मजबूर करती हैं, उन्हें सोचने की नई राहें नहीं सुझातीं। इनका अंत अक्सर इस तरह से होता है. . . "अंत में खुशी-खुशी रहने लगे।" बच्चों को शायद यह खुशी अच्छी लगे क्योंकि वे अपने परिवेश में तमाम पत्र-पत्रिकाओं में इस तरह की कहानियां पढ़ते व सुनते हैं। वे इसके इतर कोई नई चीज़ सोच नहीं पाते।

कुल मिलाकर ऐसी कहानियां बच्चों में एक कंडीशनिंग कर देती हैं। ऐसा हमें खास तौर पर तब महसूस होता है जब हम बच्चों का स्वयं का लिखा हुआ पढ़ते हैं; तब लगता है कि बच्चों को विविध तरह की सामग्री मुहैय्या करना ज़रूरी है। ऐसी सामग्री जिसमें बच्चों के लिए विभिन्न तरह की कल्पना व सोच उपस्थित हो। इसके साथ ही कुछ ऐसी सामग्री भी हो जो उन्हें स्वयं भी नई-नई चीज़ों के बारे में सोचने के अवसर दे; जिसके अंतर्गत उन्हें अपने अलग-अलग तरह के अनुभवों के बारे में सोचने का मौका मिल सके और उनके सोचने के विविध आयाम खुल सकें।

कौन बनेगा निंगथऊ

तीसरी लोक कथा 'कौन बनेगा निंगथऊ' एक मणिपुरी लोक कथा है। यह लोक कथा हमें राजा-रानियों के किस्सों की याद दिलाती है। ऐसी कहानियां भी हम पढ़ते रहे हैं जिनकी शुरुआत अक्सर इस तरह होती है – 'एक था राजा, एक थी रानी। दोनों मिलकर . . .।' हमारी इस कहानी में उनके यहां कोई बच्चा नहीं होता। राजा के शासन से प्रजा अत्यन्त सुख-चैन से रहती है। प्रजा अपने राजा को बहुत चाहती है और उनके बच्चे के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती है जिसके फलस्वरूप उनके तीन बेटे होते हैं – सान जाईबा, सान याईमा और सान तोम्बा। और फिर बारह साल बाद एक लड़की भी होती है – साना तोम्बी।

धीरे-धीरे, राजा-रानी बूढ़े हो जाते हैं और उन्हें यह चिंता सताने लगती है कि आगे उनका राज्य कौन संभालेगा? इसी के इर्द-गिर्द कहानी का ताना-बाना बुना गया है। राज्य में एक प्रतियोगिता आयोजित की जाती है जिसमें सभी राजकुमार अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन करते हैं – अधिकतर अपनी वीरता का।

ऐसी कथाओं में इस तरह के मिथक खूब होते हैं कि उनके बारह साल बाद लड़की हुई या उन्होंने फूल तोड़ा तो राजकुमार या राजकुमारी बन गई। ऐसी कहानियों में राजा-रानियों को काफी ईमानदार दिखाया जाता है और राजगद्दी के लिए आयोजित होने वाली प्रतियोगिताओं में हमेशा सबसे

'छोटे' की ही जीत होती है।

इस कहानी में बेटी साना तोम्बी को अगला राजा चुना जाता है क्योंकि वह करूणामयी थी। उसने अपने राज्य में पक्षियों, जानवरों और पेड़ -पौधों का भी ध्यान रखा था जबकि राजकुमारों ने अपनी वीरता का ही प्रदर्शन किया। इन कथाओं में अक्सर वीरता या बहादुरी से ज़्यादा महत्वपूर्ण करुणा या बुद्धि को माना जाता है। ऐसी कहानियों का अंत भी सुखमय ही होता है।

इस कहानी को अगर हम समाप्त न करके अधूरा छोड़ें तो यह बच्चों को कल्पना की उड़ान भरने का काफी मौका दे सकती है। जैसे कि तीनों राजकुमार सान जाईबा, सान याईमा और सान तोम्बा क्रमशः पेड़ को भेद कर कूदने वाले, पेड़ के ऊपर से छलांग लगाने वाले व पेड़ को उखाड़ने वाले होते हैं। इस पर हम बच्चों से पूछ सकते हैं कि अब तुम्हीं फैसला करो कि इन तीनों में से राजा किसे बनना चाहिए? ऐसे प्रश्नों से हम कहानी को खोल सकते हैं ताकि बच्चों को सोचने का मौका मिले।

यह कहानी हमारे प्राचीन परिवेश को भी परिभाषित करने का प्रयास करती है। पात्रों के इलाके का स्थानीय इतिहास भी सामने आता है। लेकिन यह भी ध्यान रखना होगा कि हमें यह इतिहास एक ही नज़रिए से बताया जाता है। अधिकतर कथाएं राजा-रानी पर ही केन्द्रित रहती हैं। इसमें दूसरा पक्ष अपनी 'पैसिव' भूमिका में रहता है, जैसा कि ऐसी बहुत-सी कहानियों में देखने को मिलता है। जनपक्षीय बात यदा-कदा ही नज़र आती है। हालांकि इस कहानी में ऐसा कुछ भी नहीं है।

इन कहानियों में कुछ मूल्य होते हैं जैसे आदर, इज्ज़त, सम्मान, सच आदि। इन मूल्यों के इर्द-गिर्द कथानक बुना जाता है। लेकिन अगर इन कहानियों में खोजा जाए तो और भी अच्छी चीज़ें निकल सकती हैं जिनसे हम कुछ नई बातें निकाल सकते हैं।

* *

अंत में, इन तीनों लोक कथाओं को देखकर यह समझ में आता है कि लोक कथाओं के काफी भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। प्रश्न यह उठता है कि हम बच्चों के साथ काम करते हुए किस तरह की कथाओं को उपयोग में लाएं? ऐसी कथाएं चुनी जाएं जो बच्चों के स्वस्थ मनोरंजन के साथ उनकी कल्पना और सोच को भी विस्तार दें – यह बात महत्वपूर्ण लगती है।

ऐसा कहा जाता है कि लोक कथाएं पुराने मूल्यों को ही उजागर करती हैं और इसके साथ एक रूढ छवि (स्टीरियो टाइप) भी रचती हैं। इससे कभी-कभी

बच्चे भ्रम में भी पड़ जाते हैं कि 'अरे! यह कैसे हो गया?' हालांकि हमें लगता है कि बच्चे भ्रम की स्थिति में भी सीखते हैं। अपना तर्क रखने की कोशिश करते हैं। यह ज़रूरी इसलिए भी है क्योंकि हम मानते हैं कि बच्चा बहुत तर्कशील व कल्पनाशील होता है। लेकिन इस बात की स्पष्टता होनी चाहिए कि कथा आखिर बताना क्या चाह रही है? इसे क्यों गढ़ा गया है? क्या विरोधाभास ऐसे हैं कि बच्चा अपना तर्क रख पाएगा? यह ज़रूरी होता है कि कथा इस तरह से रची गई हो कि बच्चा अपना तर्क रख पाए या कथा में उसे तर्क रखने में मदद मिले।

जब बच्चों को हम स्वतंत्र रूप से सोचने वाला बनाना चाहते हैं तो हमें उनकी सामग्री पर भी काफी ध्यान रखना होगा। नहीं तो बच्चों में भी एक तरह की चीज़ों की 'छवि' सी बन जाती है जो बाद में उनके लेखन व सोच में व्याप्त रहती है। इसलिए हम कहते हैं कि बच्चों के लिए विभिन्न तरह की सामग्री तो उपलब्ध हो, लेकिन बच्चों को ध्यान में रखते हुए।

इस बात को कहने में कोई हर्ज नहीं कि बच्चों के शुरुआती स्कूली दिनों में भाषा विकास के लिए इनका उपयोग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसे हमें अपने शिक्षण में उपयोग करना चाहिए और बच्चों को इस तरह की सामग्री से परिचित कराना चाहिए।

कमलेश चंद्र जोशी: लखनऊ की नालंदा संस्था से जुड़े हैं। बच्चों के साथ काम करने में विशेष दिलचस्पी है।

चित्र: 'एक्की-दोक्की' और 'ईचा पूचा' किताबों से साभार।

समीक्षित पुस्तकों के प्रकाशक: तुलिका, 7, पृथ्वी एवेन्यू, अभिरामपुरम, चैन्नई, 600018

ज़रा सिर खुजलाइए

इस बार का सवाल:

दस-दस सिक्कों की दस ढेरियां हैं। पहली ढेरी में सब सिक्के एक ग्राम के हैं, दूसरी में दो ग्राम के, तीसरी में तीन ग्राम, . . . और इसी तरह दसवीं ढेरी में दस-दस ग्राम के सिक्के हैं।

इनमें से एक ढेरी के सब सिक्के नकली हैं और उनका वज़न जितना होना चाहिए उससे 0.1 ग्राम कम या ज़्यादा है। आपको एक तराजू दी गई है। आपको बताना है कि कम-से-कम कितनी बार तोल कर आप नकली ढेरी का पता लगा सकते हैं। साथ ही आपने जो तरीका अपनाया उसका विवरण भी देना है। दस बार में तो पता लगाया ही जा सकता है, क्या नौ बार में संभव है, आठ में, सात, छ, ...!

अपने जवाब हमें लिख भेजिए।

ज़रा सिर खुजलाइए

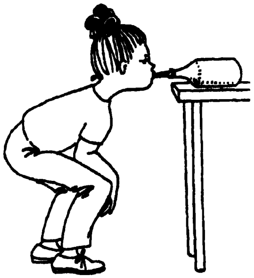

पिछली बार का सवाल: कांच की बोतल के मुंह के थोड़े भीतर एक कागज़ की गोली रखकर फूंकना था और यह बताना था कि गोली के साथ क्या हुआ? गोली बोतल के भीतर गई या बाहर गिर गई? और ऐसा क्यों हुआ होगा?

इस सवाल के काफी सारे जवाब मिले हैं। उन जवाबों का संक्षिप्त जवाब कुछ इस प्रकार है:

प्रयोग करके देखने पर समझ में आता है कि गोली अंदर नहीं जाती बल्कि बाहर आ जाती है। सबसे पहले तो यह स्पष्ट है कि बोतल कतई खाली नहीं है बल्कि उसमें पहले से ही हवा है। बोतल के भीतर की हवा का दबाव जितना है उतना ही बोतल के बाहर की हवा का भी है, इसलिए जब गोली बोतल के मुंह पर रखी हो और हम फूंक न मारें तब भी गोली न तो बोतल में गिरती है न ही बाहर गिरती है।

जब हम गोली पर फूंक मारते हैं तो हवा की काफी सारी मात्रा बोतल के भीतर जाने की कोशिश करती है जिससे बोतल के भीतर हवा का दबाव बढ़ जाता है। इस वजह से हवा बोतल के भीतर से बाहर की ओर निकलती है। ज़ाहिर है कि हवा जब बाहर आएगी तो कागज़ की गोली को भी बाहर ढकेलती हुई आएगी; और गोली बाहर गिर जाएगी।

इस प्रयोग को और आगे बढ़ाते हुए आप देख सकते हैं कि अलग-अलग आकार (साइज़) की बोतलों, अलग-अलग आकार की कागज़ी गोलियों के साथ क्या होता है? इसी तरह कागज़ की गोली पर खाली रीफिल की मदद से फूंकने पर क्या होता है? बोतल के मुंह पर अलग-अलग दिशाओं से फूंकने पर क्या होता है? उम्मीद है आप इस प्रयोग को आगे बढ़ाकर अपने अवलोकन हमें ज़रूर भेजेंगे।

इस सवाल के सही जवाब रमेश कुमार जांगिड, हनुमानगढ़, राजस्थान; प्रमोद मैथिल, इटारसी; मुकेश त्रिवेदी, शाजापुर, म. प्र. ने दिए हैं।

इस बार का सवाल पेज 45 पर देखिए।

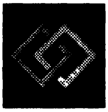

80 दिन में दुनिया की सैर

ज्यूल्स वर्न

1875 का साल था, और यह शायद इस सदी की सबसे बड़ी चुनौती थी। फिलिस फॉग ने एक शर्त में अपनी सारी सम्पत्ति दांव पर लगा दी थी कि वह 19वीं सदी की पूरी दुनिया को बिना किसी तयशुदा कार्यक्रम के, बिना किसी खास इंतज़ाम के और बिना हवाई यात्रा के ठीक 80 दिन में पार कर लेगा। अगर ज़रा भी देरी हुई या किसी अन्य प्रकार की कोई रुकावट हुई, तो फॉग अपना सब कुछ हार जाएगा। मामला और भी ज़्यादा पेचीदा इसलिए बना हुआ था क्योंकि मिस्टर फिक्स, फॉग का पीछा कर रहा था। फिक्स हरदम खज़ाने की खोज में लगा रहता था और उसका विश्वास था कि फॉग एक भगोड़ा बैंक लुटेरा है।

पूरी दुनिया का चक्कर लगाते हुए फिलिस फॉग हिन्दुस्तान से भी गुज़रता है। ज्यूल्स वर्न के उपन्यास 'एराऊंड द वर्ड इन ऐटी डेज़' के इस अंश में न सिर्फ हमें ज्यूल्स वर्न की नज़र और नज़रिए से उस समय के हिन्दुस्तान के बारे में जानकारी मिलती है, परन्तु साथ ही नवजात हिन्दुस्तानी रेल्वे के बारे में भी – जिसे उस समय 'ग्रेट इंडियन पेनिंसुला रेल्वे' के नाम से जाना जाता था।

सब लोग जानते हैं कि वह उल्टा त्रिभुज जिसका आधार उत्तर में है, और शीर्ष दक्षिण में, हिन्दुस्तान कहलाता है। यह 14,00,000 वर्ग मील पर फैला हुआ है और अठारह करोड़ की आबादी यहां पर असमान रूप से फैली हुई है। इस विशाल देश के एक बड़े भाग पर ब्रिटिश ताज़ का दमनकारी शासन चलता है। एक गवर्नर जनरल कलकत्ता में विराजमान है; मद्रास, बंबई और बंगाल में गवर्नर बैठते हैं, तथा आगरा में एक लेफ्टिनेंट गवर्नर बैठता है।

ब्रिटिश इंडिया जैसा कि आमतौर पर इसे कहा जाता है, केवल सात लाख वर्ग मील में ही फैला हुआ है। इसकी जनसंख्या 10 से 11 करोड़ के बीच है। हिन्दुस्तान का काफी बड़ा हिस्सा अभी तक ब्रिटिश शासन से आज़ाद है; और देश के अंदरुनी भागों में कुछ बहादुर और खूंखार राजा बसते हैं, जो पूरी तरह से स्वतंत्र हैं।

प्रसिद्ध ईस्ट इंडिया कंपनी सन् 1756 से, जब अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तान में पहली बार वहां पैर जमाए थे जहां आज मद्रास शहर बसा है, लेकर

1857 के गदर तक बेहिसाब ताकतवर थी। वह धीरे-धीरे स्थानीय मुखियाओं से उनके इलाके खरीदकर अपने कब्ज़े में करती गई, ज़्यादातर बिना कीमत अदा किए; और वहां गवर्नर जनरल तथा उसके अधिनस्थ सैनिक व सिविल कर्मचारियों की नियुक्ति करती गई। लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी अब नहीं रही, और हिन्दुस्तान में अब ब्रिटिश कब्ज़े वाले इलाके सीधे-सीधे ब्रिटिश ताज़ के नियंत्रण में आ गए हैं। इस देश के बहुत से पहलुओं, खासतौर पर यहां के तौर-तरीकों और विभिन्न जातियों के बीच के रिश्तों में दिनों-दिन बदलाव आ रहे हैं।

पहले के ज़माने में हिन्दुस्तान में कहीं भी जाना हो तो या तो पैदल ही रास्ता मापना पड़ता था, या फिर घोड़ों, पालकियों अथवा अनगढ़ बग्घियों जैसे अत्यन्त धीमे वाहनों का सहारा लेना पड़ता था। आजकल गंगा और सिंधु नदियों पर तेज़ गति से स्टीमर चलते हैं; और एक बड़ी रेल लाइन भी है जिससे बंबई से कलकत्ता, प्रायद्वीप के एक छोर से दूसरे छोर तक तीन दिन में पहुंचा जा सकता है। रास्ते में इस रेल लाइन से और बहुत-सी छोटी-छोटी शाखाएं आकर मिलती हैं। यह रेल लाइन भारत के आर-पार एक सीधी लकीर में नहीं जाती। बंबई से कलकत्ता की हवाई दूरी अगर एक पक्षी की सीधी उड़ान से आंकी जाए तो 1000 से 1100 मील के बीच होगी। लेकिन ज़मीन पर वही दूरी रास्ते के घुमावदार मोडों आदि के कारण करीब एक-तिहाई और बढ़ जाती है।

'ग्रेट इंडियन पेनिंसुला रेल्वे' का मार्ग कुछ इस प्रकार है – बंबई छोड़ने के बाद यह सेलसेट से गुज़रती है, फिर ठाणे के सामने के प्रदेश से होकर, पश्चिमी घाट की शृंखला को पार कर उत्तर-पूर्व में बुरहानपुर तक आती है, और स्वतंत्र राज्य बुंदेलखंड के किनारे-किनारे होती हुई ऊपर इलाहाबाद तक जाकर, घूमकर पूर्व में बनारस में गंगा से जा मिलती है। फिर आगे चलकर नदी से थोड़ा हटकर दक्षिण-पूर्व में नीचे बर्दवान तथा फ्रांसीसी नगर चंदरनगर होकर आखिर में कलकत्ता पहुंचती है।

* *

'मंगोलिया' जहाज़ के यात्री बंबई तट पर साढ़े चार बजे पहुंचे, कलकत्ता के लिए रेल गाड़ी ठीक आठ बजे चलनी थी।

मिस्टर फॉग ने अपने ताश खेलने वाले साथियों से विदा ली और जहाज़ से बाहर आ गए। उन्होंने अपने नौकर

को कुछ हिदायतें दीं और अच्छे से समझाया कि वह ठीक आठ बजे तक स्टेशन पहुंच जाए। फिर वे अपनी अत्यन्त नियमित चाल से जो कि घड़ी की टिक-टिक जैसी प्रतीत होती थी पासपोर्ट ऑफिस की ओर चल दिए।

बंबई के अद्भुत दर्शनीय स्थल, जाना-माना सिटी हॉल, शानदार पुस्तकालय, तरह-तरह के किले और बंदरगाह, बाज़ार, मस्जिदें, सिनेगॉग, आरमेनियन गिरजाघर और मलाबार हिल का प्रसिद्ध मंदिर जिसकी दो बहुकोणीय मीनारें हैं, इन सब को देखने में उनकी रत्ती भर भी रुचि न थी। यहां तक कि उन्होंने ऐलिफेंटा की श्रेष्ठ कलाकृतियों, बुद्धकालीन वास्तु-कला के अवशेषों और सेलसेट द्वीप पर स्थित कन्हेरी गुफाओं को भी देखना नहीं चाहा।

पासपोर्ट दफ्तर में अपना काम निपटाकर वो शांति से रेल्वे स्टेशन आ गए, और अपने रात के खाने का ऑर्डर दिया। उन्हें जो व्यंजन परोसे गए उनमें से एक की होटल मालिक ने खास सिफारिश की थी, जिस पर उसे काफी नाज़ था। यह था 'नेटिव रैबिट' यानी खालिस देसी खरगोश। मिस्टर फॉग ने इसे चखा। यह काफी मसालेदार था लेकिन उन्हें एकदम नागवार गुज़रा। उन्होंने होटल मालिक को बुलाने के लिए घंटी बजाई और आने पर उसे घूरते हुए पूछा, "यह खरगोश है?"

"जी हुजूर", धूर्त ने ढिठाई से जवाब दिया, "खरगोश सीधा जंगल से लाया गया है।"

"और जब इसे मारा गया होगा तो इस खरगोश ने म्याऊं भी नहीं की होगी?"

"क्या? म्याऊं! खरगोश म्याऊं करता है क्या हुज़ूर! मैं कसम खाता हूं . . . ।"

"अब इतना-सा भला काम करो कि कसम तो मत खाओ। और यह भी याद रखो कि बिल्लियां एक ज़माने में भारत में पवित्र मानी जाती थीं। वह समय अच्छा रहा होगा।"

"हुज़ूर, क्या बिल्लियों के लिए?"

"शायद मुसाफिरों के लिए भी।"

उसके बाद मिस्टर फॉग ने चुपचाप बाकी का भोजन किया

✱ ✱

फॉग के जाने के थोड़ी देर बाद, मिस्टर फिक्स भी किनारे पर पहुंच गया था। बंबई पहुंचने पर उसका पहला लक्ष्य बंबई पुलिस मुख्यालय था। वहां उसने अपना परिचय लंदन के एक जासूस के रूप में दिया, और बंबई में

अपने काम तथा तथाकथित डाकू के बारे में अवगत कराया, फिर घबराते हुए पूछा कि लंदन से कोई वारंट आया है क्या? वारंट अभी तक बंबई नहीं पहुंचा था, वास्तव में अभी उसके पहुंचने का वक्त ही नहीं हुआ था। फिक्स बहुत निराश हुआ और उसने बंबई पुलिस डायरेक्टर से ही गिरफ्तारी के लिए वारंट प्राप्त करने की कोशिश की, लेकिन डायरेक्टर ने साफ मना कर दिया क्योंकि यह लंदन ऑफिस का मामला था और कानूनी तौर पर सिर्फ वे ही वारंट दे सकते थे। फिक्स ने ज़्यादा आग्रह नहीं किया और उस महत्वपूर्ण कागज़ के आने का इंतज़ार करने का तय किया। साथ ही उसने यह निश्चय भी किया कि जब तक वह रहस्यमई गुण्डा बंबई में है, वह उसे अपनी नज़रों से ओझल नहीं होने देगा। उसे एक पल के लिए भी संदेह नहीं हुआ कि फॉग वारंट के आने तक बंबई में नहीं रहेगा।

लेकिन पासपार्टआउट ने 'मंगोलिया' जहाज़ से उतरते समय अपने मालिक का हुक्म सुनते ही जान लिया था कि वे लोग फौरन ही बंबई छोड़ने वाले हैं, जैसा कि उन्होंने सुएज़ और पेरिस में किया था और उनका सफर कम-से-कम कलकत्ता तक बढ़ने वाला है, और शायद उससे भी आगे। और तब उसने अपने आपसे सवाल किया था कि क्या वाकई फॉग अपनी इस शर्त को पूरा करने पर डटे हुए हैं? और क्या उसे भी अपनी आराम-पसंद प्रकृति के खिलाफ उनके पीछे-पीछे अस्सी दिन में दुनिया का एक चक्कर लगाने पर मजबूर होना पड़ेगा!

उसने बाज़ार से अपनी ज़रूरत के मुताबिक जूते और कमीज़ें खरीदीं और फिर बंबई की सड़कों पर मज़े से चहलकदमी करने लगा। वहां बहुत-से देशों के लोगों की भीड़-भाड़ थी – इनमें कुछ यूरोपियन थे, नोकदार टोपियां पहने पर्शियन थे, गोल पगड़ियां पहने बनिए थे, चौकोर टोपियां पहने सिंधी थे, काली टोपी पहने पारसी थे और लंबे चोगों में आरमेनियन थे। उस दिन कोई पारसी त्यौहार था। ये ज़ॉरोएस्टर सम्प्रदाय के वंशज बहुत ही किफायती, सभ्य तथा बुद्धिमान होते हैं। इनमें से कई बंबई के सबसे अमीर व्यापारियों में गिने जाते हैं।

ये लोग एक धार्मिक उत्सव मना रहे थे। कोई जुलूस निकल रहा था जिसमें सोने-चांदी के गहनों से लदी हिन्दुस्तानी लड़कियां कसीदे वाले गुलाबी रंग के जालीदार कपड़े पहने, शालीनता से साजों की धुन पर नृत्य कर रही थीं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस अनोखे समारोह को

पासपार्टआउट एकटक देख रहा था और उसका मुंह आश्चर्य से खुला ही रह गया था।

यह उसका व उसके मालिक का दुर्भाग्य ही कहिए कि उसकी जिज्ञासा जितनी दूर तक वह जाना चाहता था उससे उसे कहीं आगे ले गई। आखिर-कार पारसी जुलूस को दूर खत्म होते हुए देख वह अपने कदम स्टेशन की ओर मोड़ रहा था कि उसकी नज़र मलाबार हिल के खूबसूरत मंदिर पर पड़ी, और उसके मन में इसे अंदर से देखने की तीव्र इच्छा जाग उठी। वह अपने आपको रोक नहीं पाया। उसे मालूम नहीं था कि हिन्दुओं के कुछ मंदिरों में ईसाइयों को जाने की इजाज़त नहीं होती और सभी को जूते दरवाज़े के बाहर उतार कर नंगे पांव अंदर जाना होता है। यहां यह बता देना उचित होगा कि ब्रिटिश सरकार की यह सोची-समझी नीति थी कि स्थानीय धर्मों की इज़्ज़त न करने वालों को कठोर सज़ा दी जाए।

पासपार्टआउट बेचारा, बिना किसी दुराभाव के, सामान्य टूरिस्ट की तरह अंदर चला गया और वहां की शानदार कारीगरी और सजावट में खो गया। जिस ओर उसकी नज़र गई हर जगह आश्चर्यजनक नक्काशी का नज़ारा था। तभी अचानक उसने अपने-आपको पवित्र पूजा स्थल पर धराशाई पाया। ऊपर की ओर देखने पर उसे गुस्से में उफनते हुए तीन पुजारी दिखाई दिए जो उस पर टूट पड़े। उन्होंने उसके जूते फाड़ दिए और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए उसे पीटने लगे। फुर्तीला फ्रांसीसी फौरन उठ खड़ा हुआ। उसने फुर्ती से दो लंबे चोगे वाले पुजारियों को लातों-घूंसों से मार गिराया, और फिर तेज़ी से भागकर मंदिर से बाहर आकर भीड़ में जा मिला, और इस तरह उसने तीसरे पुजारी से भी अपनी जान बचाई।

आठ बजने से ठीक पांच मिनट पहले पासपार्टआउट नंगे पांव, नंगे सिर, हांफता हुआ स्टेशन पहुंचा। झगड़े के दौरान उसका कपड़ों और जूतों का बंडल भी खो गया था।

मिस्टर फिक्स ने फॉग का स्टेशन तक पीछा किया और पाया कि वह प्लेटफॉर्म पर मौजूद है और वास्तव में तुरन्त बंबई छोड़ने वाला है। उसने इस लुटेरे का कलकत्ता तक, और ज़रूरी हुआ तो और भी आगे तक पीछा करने की ठान रखी थी। पासपार्टआउट जासूस की मौजूदगी से अनजान था क्योंकि वह एक अंधेरे कोने में खड़ा था, लेकिन फिक्स ने उसकी जोखिम भरी कहानी सुन ली।

"मुझे उम्मीद है कि ऐसा कुछ फिर

नहीं होगा", फॉग ने गाड़ी में चढ़ते हुए कहा। बेचारा पासपार्टआउट भी हतोत्साहित-सा अपने स्वामी के पीछे पीछे गाड़ी में चढ़ गया। फिक्स गाड़ी के दूसरे डिब्बे में चढ़ने ही वाला था, कि अचानक उसे एक विचार आया जिस कारण उसने अपना पहले वाला प्रोग्राम बदल दिया।

"नहीं मैं यहीं ठहरूंगा", वह बुदबुदाया, "हिन्दुस्तान की ज़मीन पर एक अपराध हुआ है।"

और तभी रेल के इंजन ने एक कर्कश सीटी बजाई और रेलगाड़ी रात के अंधेरे में गुम हो गई।

* *

रेलगाड़ी ठीक समय से चल दी। मुसाफिरों में बहुत से अफसर थे, सरकारी अफसर और नील व अफीम के व्यापारी जिन्हें अपने कारोबार के लिए पूर्वी तट तक जाना पड़ता था। पासपार्टआउट अपने स्वामी के साथ उसी के डिब्बे में सफर कर रहा था और एक तीसरे यात्री ने उनके सामने की सीट ले ली थी। ये थे सर फ्रांसिस क्रोमेरटी, 'मंगोलिया' जहाज़ की यात्रा के दौरान मिस्टर फॉग के ताश के साथियों में से एक, जो अपनी बटालियन में शामिल होने बनारस जा रहे थे। सर फ्रांसिस गोरे तथा छरहरे थे, उनकी आयु लगभग 50 वर्ष थी और गदर के वक्त उन्होंने अपनी खास पहचान बनाई थी। इन्होंने हिन्दुस्तान को ही अपना घर मान लिया था, और हमेशा के लिए यहीं बस गए थे।

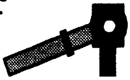

वे लंबे अर्से के बाद कभी-कभार ही, कुछेक दिन के लिए इंग्लैंड जाते थे। वे एक हिन्दुस्तानी की भांति यहां के रीति-रिवाज़ों, यहां के इतिहास आदि से पूरी तरह वाकिफ थे। लेकिन फिलिस फॉग ने इन सब बातों के बारे में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई क्योंकि वे टूरिस्ट के तौर पर यात्रा नहीं कर रहे थे, वे तो मानों एक ठोस पिंड के समान थे जिसे तार्किक नियमों का पालन करते हुए महज पृथ्वी की परिधि का एक चक्कर पूरा करना था।

इस पल भी वे अपने दिमाग में यही हिसाब लगा रहे थे कि उन्हें लंदन से यहां तक आने में कुल कितने घंटे लगे और अगर उनकी आदत बेमतलब का दिखावा करने की होती तो वे इस वक्त संतोष की गहरी सांस भर रहे होते।

सर फ्रांसिस ने अपने हमसफर के अनोखेपन पर गौर किया था, हालांकि

उन्हें फॉग को जानने का मौका सिर्फ तभी मिलता था जब वे ताश के पत्ते बांट रहे होते थे या दो बाज़ियों के बीच के वक्त में। वे अपने-आप से प्रश्न कर रहे थे कि इस पत्थर जैसे व्यक्तित्व के पीछे क्या सचमुच मनुष्य का दिल धड़कता है, क्या फॉग को प्रकृति की सुंदरता का ज़रा भी अहसास है? ब्रिगेडियर जनरल ने मन-ही-मन स्वीकार किया कि अब तक वह जितने भी सिरफिरे लोगों से मिले थे उनमें से कोई भी इस अजूबे की टक्कर का नहीं था।

फिलिस फॉग ने सर फ्रांसिस से कुछ नहीं छिपाया, न तो अपना इस तरह दुनिया का चक्कर लगाने का उद्देश्य और न ही यह कि किन परिस्थितियों में उन्होंने ऐसा करने का निर्णय लिया था। जनरल को फॉग की इस शर्त में केवल बेसिर-पैर पागलपन और स्वस्थ सामान्य बुद्धि की कमी के सिवाय और कुछ नज़र नहीं आया। जिस तरीके से यह विचित्र यात्री आगे बढ़ रहा था, उससे तो किसी का भी भला नहीं होने वाला था, न तो स्वयं उसका और न ही किसी दूसरे का। और इस तरह वह बिना कुछ अच्छा किए ही इस दुनिया से चला जाने वाला था।

बंबई छोड़ने के एक घंटे बाद रेलगाड़ी सेलसेट द्वीप व पुलों को पार कर खुले प्रदेश में आ गई। कल्याण में वे उस ब्रांच लाइन के जंक्शन पर पहुंचे जो नीचे दक्षिण-पूर्व की ओर खंडाला और पूना जाती थी; और फिर गाड़ी ने पॉवेल को पार कर पहाड़ों के तंग दर्रों में प्रवेश किया। इन पहाड़ों का आधार बेसाल्ट (एक चट्टान) का था, और इनकी चोटियों पर घने जंगल थे। दोनों यात्री आपस में कभी-कभी थोड़ी-बहुत बातचीत कर लेते थे।

सर फ्रांसिस ने फिर से बातचीत शुरू करते हुए कहा, "अगर आपने कुछ वर्ष पहले ऐसी शर्त लगाई होती तो आप अवश्य हार गए होते क्योंकि इस जगह पर आकर आपका बहुत समय नष्ट हो जाता।"

"ऐसा क्यों, सर फ्रांसिस?"

"क्योंकि उस समय यह गाड़ी इन पहाड़ों की तलहटी में रुक जाती थी, और मुसाफिरों को पहाड़ों के दूसरी ओर खंडाला तक पालकी या खच्चरों से जाना पड़ता था।"

"इस प्रकार की देरी से मेरे इरादे पर ज़रा भी असर नहीं पड़ता", फॉग ने कहा, "मैं इस प्रकार की बाधाओं की संभावना के लिए पहले से तैयार रहता हूं।"

"लेकिन मिस्टर फॉग", सर फ्रांसिस ने बात जारी रखते हुए कहा, "आपको

आपके इस साथी के मंदिर में किए गए दु:साहस की वजह से कुछ परेशानी होने का खतरा है।" पासपार्टआउट कंबल में लिपटा आराम से सो रहा था। उसे सपने में भी नहीं आया कि कोई उसके बारे में बात कर रहा था।

"सरकार का रवैया इस तरह के अपराधों के बारे में काफी कठोर है। इस बात का खास ध्यान रखा जाता है कि हिन्दुस्तान के रीति-रिवाज़ों को पूरी इज़्ज़त दी जाए और अगर आपका यह आदमी पकड़ा जाता ...।"

"बहुत अच्छा, सर फ्रांसिस", फॉग ने जवाब दिया, "अगर ये पकड़ा भी जाता तो इसे सज़ा मिलती और फिर यह कुछ दिन बाद चुपचाप यूरोप वापस चला जाता। मैं नहीं समझ सकता कि उसके इस किस्से से उसके स्वामी को किस तरह देर होती?"

बातचीत फिर रुक गई। रात के सफर में गाड़ी पहाड़ों को पीछे छोड़ और नासिक पार कर अगले दिन खानदेश प्रदेश के समतल, लहराते खेतों में आ पहुंची। इस इलाके में बड़े-बड़े गांव फैले हुए थे, जिनमें मंदिरों के ऊपर उठे हुए गुंबज दूर से दिखाई दे जाते थे। इस उपजाऊ प्रदेश की सिंचाई अनगिनत छोटी-छोटी नदियों से होती है जो ज़्यादातर गोदावरी की सहायक नदियां हैं।

पासपार्टआउट सोकर उठा और उसने बाहर देखा तो एकबारगी वह समझ ही नहीं पाया कि वह वाकई रेलगाड़ी में बैठा हिन्दुस्तान को पार

कर रहा है। रेल के इंजन को एक अंग्रेज़ इंजीनियर चला रहा था और उसमें जलने वाला कोयला भी इंग्लैंड का ही था। इंजन अपना धुंआ कपास, कॉफी, जायफल, लौंग, काली-मिर्च के बागानों पर फेंक रहा था। जबकि भाप ताड़ के पेड़ों के झुंडों के चारों ओर चक्कर लगा रही थी जिनके बीच में खूबसूरत बंगले, विहार और हिन्दुस्तानी वास्तुशिल्प से सजे सुंदर मंदिर थे; और आगे जाने पर वे इतने विशाल इलाकों में पहुंच गए जो कि ऐसा लगता था मानों क्षितिज तक फैले हुए हों। यहां घने जंगल थे, जिनमें सांप, बाघ आदि जानवर रहते थे। ये जानवर गाड़ी की आवाज़ सुनकर दूर भाग जाते थे, जंगल में हाथी भी थे जो उदास नज़रों से गाड़ी को जाते देखते रहते थे।

आगे बढ़ते हुए यात्रियों ने मालेगांव पार किया। यह वह देश था जहां 'मां काली संप्रदाय' के अनुयायियों के कारण कई बार रक्तपात हुआ था। पास ही एलोरा के मंदिरों के शानदार गुंबज ऊपर उठे हुए दिख रहे थे। और औरंगाबाद भी नज़र आ रहा था, जो किसी समय खूंखार बादशाह औरंगज़ेब की राजधानी रही थी। आजकल यह निज़ाम के राज्य से अलग हुए प्रांत का प्रमुख नगर है। वहीं कहीं आसपास ही ठगों के मुखिया फरींगी का राज्य था जो गला घोटकर मारने वालों का उस्ताद था। ये ठग आपस में किसी गुप्त बंधन से बंधे थे। ये लोग मृत्यु की देवी के सम्मान में, किसी भी उम्र के शिकार को, बिना खून गिराए गला घोटकर मार डालते थे। एक समय ऐसा भी था जब देश के इस भूभाग में यात्रा करते हुए अक्सर चारों तरफ लाशें नज़र आती थीं। अंग्रेज़ सरकार इन हत्याओं को रोकने में काफी हद तक सफल रही। हालांकि अभी भी ठगी की घटनाएं होती हैं और वे लोग अपना यह भयानक धार्मिक अनुष्ठान भी करते हैं।

साढ़े बारह बजे गाड़ी बुरहानपुर ठहरी जहां पासपार्टआउट ने कुछ हिन्दुस्तानी चप्पल खरीदीं। इन चप्पलों पर नकली मोतियों का काम किया गया था। उसने बहुत शान के साथ इन्हें पहना। मुसाफिरों ने जल्दी-जल्दी नाश्ता किया और फिर गाड़ी असीरगढ़ की ओर चल पड़ी। थोड़ी दूर तक गाड़ी ताप्ती नदी के किनारे उसके साथ-साथ चली। यह छोटी-सी नदी सूरत के निकट खंभात की खाड़ी में गिरती है।

पासपार्टआउट अब दिवास्वप्नों में खो गया था। बंबई पहुंचने तक उसे उम्मीद थी कि उनकी यात्रा वहां खत्म

हो जाएगी; लेकिन अब जबकि वे लोग पूरी रफ्तार के साथ हिन्दुस्तान के आर-पार जा रहे थे उसके ख्वाबों ने अचानक ही पलटा खाया, उसकी घुमक्कड़ी की पुरानी आदत फिर से लौट आई। उसकी जवानी के सपनों ने एक बार फिर से उसे बस में कर लिया था।

वह अपने स्वामी की योजना को महत्वपूर्ण मानने लगा था और शर्त की वास्तविकता में विश्वास करने लगा था। इसलिए दुनिया के दौरे और इसे निश्चित समय में पूरा करने की आवश्यकता भी समझने लगा था। अब उसने रास्ते में घट सकने वाली दुर्घटनाओं और रुकावटों के बारे में सोचना शुरू कर दिया था। वह खुद इस शर्त में दिलचस्पी लेने लगा और पिछली रात की मंदिर वाली घटना को याद कर कांप उठा कि उसकी माफ न करने लायक वो बेवकूफी शर्त हारने का ज़रिया बन सकती थी।

वह फॉग से कहीं कम ठंडे दिमाग वाला इंसान था इसीलिए बहुत ज़्यादा बेचैन था। वह गुज़रे हुए दिनों को बार-बार गिन रहा था और जब गाड़ी रुकती तो आक्रोश में अपशब्द बोलने लगता और गाड़ी को उसकी सुस्त चाल के लिए दोष देने लगता। वह मन-ही-मन मिस्टर फॉग को भी कोस रहा था कि उन्होंने गाड़ी के इंजीनियर को रिश्वत क्यों नहीं खिला दी; उस बंदे को यह नहीं मालूम था कि जहां इस तरह की तरकीबों से स्टीमर की रफ्तार को तेज़ करना संभव था, रेलगाड़ी के साथ ऐसा नहीं किया जा सकता था।

शाम को गाड़ी ने सतपुड़ा पहाड़ी के दर्रे में प्रवेश किया, जो कि खानदेश को बुंदेलखंड से अलग करता है। अगले दिन सर फ्रांसिस ने पासपार्टआउट से समय पूछा, जिस पर पासपार्टआउट ने अपनी घड़ी देखकर कहा कि सुबह के तीन बजे हैं। उसकी यह मशहूर घड़ी हमेशा ग्रीनविच समय से मिली रहती थी। इस समय वह घड़ी ग्रीनविच से 77 डिग्री पूर्व में थी और इसलिए यहां के समय के हिसाब से कम-से-कम चार घंटे पीछे थी।

सर फ्रांसिस ने उसे ठीक समय बताते हुए कहा कि हरेक नई देशांतर रेखा पर पहुंचने पर घड़ी को ठीक कर लेना चाहिए, क्योंकि पूर्व की ओर जाने पर हर एक डिग्री पार करने पर दिन चार मिनट पहले उगता है। लेकिन पासपार्टआउट ने हठवश अपनी घड़ी का समय बदलने से इंकार कर दिया, जिसे उसने लंदन के समय से मिला रखा था। वह एक निष्कपट भ्रम बनाए हुए था जिससे किसी का कोई नुकसान

नहीं हो रहा था।

गाड़ी आठ बजे रोथल से 15 मील आगे वनों के बीच एक मैदान में रुकी। वहां बहुत से बंगले और कामगारों के केबिन थे। डिब्बों के पास से गुज़रते हुए कंडक्टर चिल्लाकर कहने लगा, "मुसाफिरों को यहां उतरना होगा।"

मिस्टर फॉग ने इसका मतलब जानने के लिए सर फ्रांसिस की ओर देखा लेकिन जनरल कुछ नहीं बता सके कि इस खजूर और बबूल के जंगल में ठहरने का मतलब क्या था। पासपार्टआउट को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। वह बाहर भागा और फिर तेज़ी से वापस आया और चिल्लाया,

"हुजूर आगे रेल नहीं है।"

"तुम्हारा क्या मतलब है", सर फ्रांसिस ने पूछा।

"मेरे कहने का मतलब यह है कि गाड़ी आगे नहीं जा रही।"

जनरल तुरंत ही बाहर निकले और उनके पीछे पीछे मिस्टर फॉग इत्मीनान के साथ बाहर आए। दोनों साथ-साथ कंडक्टर के पास पहुंचे और उससे पूछा,

"हम कहां हैं?"

"खोलबी गांव में।"

"क्या हम यहीं रुकेंगे?"

"हां, क्योंकि रेल लाइन अभी पूरी नहीं बिछी है।"

"क्या? अभी पूरी बिछी नहीं है?"

"देखिए, ऐसा है कि यहां से पचास मील दूर इलाहाबाद तक रेल लाइन बिछाना अभी बाकी है। वहां से लाइन फिर से शुरू हो जाएगी।"

"लेकिन अखबारों में तो शुरू से अंत तक पूरी तरह रेल लाइन के खुल जाने की घोषणा थी।"

"आपको क्या लगता है? एकदम साफ है कि अखबार गलत थे।"

"फिर भी आप बंबई से कलकत्ता तक के टिकट बेचते हैं", सर फ्रांसिस ने कहा। अब उन्हें भी गुस्सा आने लगा था।

"इसमें तो कोई शक नहीं है", कंडक्टर ने जवाब दिया, "लेकिन मुसाफिर जानते हैं कि खोलबी से इलाहाबाद तक जाने के लिए वाहन का इंतज़ाम उन्हें खुद करना होगा।

सर फ्रांसिस बहुत गुस्से में थे। इस वक्त पासपार्टआउट ने सहर्ष कंडक्टर को मार कर नीचे गिराया होता। उसकी अपने स्वामी की ओर देखने की हिम्मत भी नहीं हो रही थी।

"सर फ्रांसिस", मिस्टर फॉग ने शांति से कहा, "अगर आप कहें तो हम लोग इलाहाबाद तक जाने के लिए कोई सवारी देखें।"

"मिस्टर फॉग, यह देरी आपके लिए

काफी नुकसानदायक हो सकती है।"

"नहीं सर, इसको तो मैंने पहले से ही भांप लिया था।"

"क्या! क्या आप रास्ते के बारे में...."

"नहीं नहीं, ज़रा-सा भी नहीं। लेकिन मैं यह जानता था कि मेरे रास्ते में कभी-न-कभी, कोई-न-कोई बाधा अवश्य आएगी। इसलिए हमने कुछ भी नहीं खोया है। मेरे पास अभी दो दिन का वक्त बचा हुआ है जो मैंने ऐसे ही मौकेपर गंवाने के लिए बचाया था। कलकत्ता से हांग-कांग के लिए एक स्टीमर 25 तारीख को दोपहर को चलेगा। आज 22 तारीख ही है। हम वक्त पर कलकत्ता पहुंच जाएंगे।"

इतने आत्मविश्वास पूर्ण जवाब के बाद कहने के लिए और कुछ रह ही नहीं गया था।

यह सच था कि रेल लाइन इस जगह आकर खत्म हो जाती थी। अखबार कुछ ऐसी घड़ियों की तरह होते हैं जिनकी आदत बहुत तेज़ चलने की होती है। उन्होंने रेल लाइन के पूरा होने की घोषणा भी उसके पूरा हुए बिना ही कर दी थी। ज़्यादातर मुसाफिरों को इस रुकावट की जानकारी थी और गाड़ी से उतरते ही वे गांव में मिलने वाली सवारियों का इंतज़ाम करने में लग गए थे, जैसे इक्का, रथ, बैलगाड़ी, खच्चर, पालकी आदि।

फॉग और सर फ्रांसिस ने गांव में एक छोर से दूसरे छोर तक सवारी ढूंढी, लेकिन उन्हें कोई सवारी नहीं मिली और वे वापस आ गए।

"मैं पैदल ही जाऊंगा", फॉग ने कहा।

पासपार्टआउट भी अब तक वापस आ गया था और उसने यह सुनकर भौएं सिकोड़ी। उसे अपनी शानदार लेकिन नाज़ुक हिन्दुस्तानी चप्पलों की फिक्र थी। वह भी वाहन की खोज में गया था। थोड़ा हिचकिचाते हुए उसने कहा, "हुजूर मुझे लगता है, मैंने जाने के लिए साधन ढूंढ लिया है।"

"क्या?"

"एक हाथी, यह एक हिन्दुस्तानी का हाथी है जो यहां से लगभग सौ कदम की दूरी पर रहता है।"

"चलो, हम चलकर उस हाथी को देखें", फॉग ने जवाब दिया। जल्दी ही वे लोग एक छोटी-सी झोंपड़ी के पास पहुंचे जहां बाड़े में वह हाथी खड़ा था। एक हिन्दुस्तानी आदमी झोंपड़ी से बाहर आया और उनके आग्रह पर उन्हें बाड़े में ले गया। उस हाथी का पालन पोषण उसके मालिक ने बोझा ढोने वाला जानवर बनाने के लिए नहीं किया था बल्कि वह उसे युद्ध आदि में काम आने वाला बनाना

चाहता था। वह आधा पालतू था, इसके लिए वह हिन्दुस्तानी आदमी उसे अक्सर गुस्सा दिलाया करता था; और हर तीन महीने बाद उसे चीनी और मक्खन खिलाया करता था; जिससे उसमें वो उग्रता आ जाए जो कि हाथी के स्वभाव में नहीं होती। यह तरीका हाथियों को युद्ध के लिए ट्रेनिंग देने वाले अक्सर काम में लाते हैं।

फॉग के लिए यह खुशी की बात थी कि इस दिशा में अभी तक उस हाथी को ज़्यादा ट्रेनिंग नहीं दी गई थी। हाथी में अभी तक उसकी प्राकृतिक नम्रता सुरक्षित थी। उसका नाम किऔनी था। किऔनी निःसंदेह तेज़ी से और लंबे समय तक यात्रा कर सकता था। यात्रा के लिए कोई और साधन नहीं मिलने पर फॉग ने उसे ही किराए पर लेने का निश्चय किया। हिन्दुस्तान में हाथी सस्ते नहीं मिलते क्योंकि यहां ये कम होते जा रहे हैं। नर हाथियों की मांग अधिक होती है क्योंकि सरकस के लिए नर हाथी ही उपयुक्त होते हैं। उनमें से भी कुछेक को ही पालतू बनाया जा सकता है।

जब फॉग ने हिन्दुस्तानी से हाथी किराए पर देने को कहा तो उसने साफ इंकार कर दिया। फॉग लगातार आग्रह करते रहे और उन्होंने उस हाथी को इलाहाबाद तक ले जाने के लिए दस पौंड प्रति घंटा जैसी बड़ी रकम देने का प्रस्ताव रखा। हिन्दुस्तानी ने मना कर दिया। बीस पौंड प्रति घंटे पर भी वह नहीं माना। यहां तक कि चालीस पौंड प्रति घंटा पर भी राज़ी नहीं हुआ। हर बार पैसा बढ़ाने पर पासपार्टआउट उछलता लेकिन हिन्दुस्तानी लालच में नहीं आया। फिर भी प्रस्ताव बहुत लुभावना था, मान लीजिए हाथी को इलाहाबाद पहुंचने में पंद्रह घंटे लगते हैं, तो उसके मालिक को छः सौ पौंड मिलेंगे।

फॉग ने ज़रा भी विचलित हुए बिना सीधे ही हाथी को खरीदने का प्रस्ताव रख दिया और उसके लिए एक हज़ार पौंड देने की बात कही। शायद हिन्दुस्तानी ने सोचा होगा कि वह कोई बड़ा सौदा करने जा रहा है, इसलिए इस पर भी उसने साफ मना कर दिया।

सर फ्रांसिस, फॉग को एक ओर ले गए और उनसे कहा कि और ज़्यादा आगे बढ़ने से पहले, वे अच्छी तरह सोच-समझ लें। इस पर फॉग ने जवाब दिया कि तैश में आकर कुछ करने की उनकी आदत नहीं है। बीस हज़ार पौंड की शर्त दांव पर लगी है। उस वक्त हाथी उनके लिए बहुत आवश्यक है और अगर हाथी की कीमत का बीस गुना भी देना पड़ा, तब भी वे उसे ले

लेंगे। वे लोग हिन्दुस्तानी के पास वापस आए, उसकी आंखों की तेज़ी से साफ लग रहा था कि उसके लिए सिर्फ यही प्रश्न बाकी था कि वह ज़्यादा-से-ज़्यादा कितनी कीमत वसूल कर सकता है।

मिस्टर फॉग ने पहले बारह सौ, फिर पंद्रह सौ, अठारह सौ और फिर दो हज़ार पौंड की पेशकश की। पासपार्टआउट जिसका चेहरा हमेशा लाल-सा लगता था, हैरत से सफेद हुआ जा रहा था।

हाथी की कीमत दो हज़ार पौंड देने की पेशकश को हिन्दुस्तानी मान गया।

"हे भगवान! एक हाथी की इतनी ऊंची कीमत", पासपार्टआउट चिल्लाया।

अब सिर्फ एक मार्गदर्शक ढूंढना बाकी रह गया था, जो इसकी तुलना में काफी आसान था। एक युवा पारसी, जो शक्ल सूरत से होशियार लगता था, यह काम करने के लिए आगे आया। फॉग राज़ी हो गए और उन्होंने उसका जोश बढ़ाने के लिए उसे काफी ज़्यादा पैसा देने का वादा किया। हाथी बाहर लाया गया और उस पर साज-सामान बांधा गया। पारसी एक कुशल महावत भी था। उसने हाथी की पीठ को एक जीन की तरह के कपड़े से ढांक दिया और उसके ऊपर एक अजीब-सा बेआराम हौदा उसकी बगल से बांध दिया।

✷ ✷

मिस्टर फॉग और उनके साथी ने अपनी आगे की यात्रा हिन्दुस्तानी जंगलों में से होकर जारी रखी।

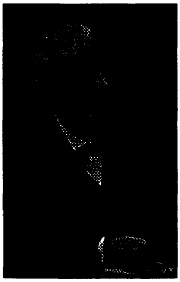

ज्यूल्स वर्न: (1828–1905) कानून की पढ़ाई करने के बावजूद उनका झुकाव विज्ञान गल्प लिखने की ओर था। बिना किसी शक के कहा जा सकता है कि 19वीं सदी में विज्ञान गल्प की परम्परा की उन्होंने ही शुरुआत की। ज्यूल्स वर्न की लेखन प्रतिभा की झलक उनके द्वारा लिखी गई काल्पनिक यात्रा कथाओं में दिखाई देती है। 'फाइव वीक्स इन ए बेलून' से शुरू करके उन्होंने चांद तक का सफर, धरती के केन्द्र की यात्रा, पनडुब्बी के सहारे समुद्री यात्रा जैसी बहुत-सी विज्ञान कथाएं लिखीं। इनमें सबसे मशहूर 'अराउंड द वर्ल्ड इन एटी डेज़' ही है जिसे आज भी पसंद किया जाता है। इस कहानी व उनकी और कई कहानियों पर फिल्में भी बनाई गई हैं।

पुष्पा अग्रवाल: शौकिया तौर पर अनुवाद करती हैं। जयपुर में रहती हैं।

संदर्भ सजिल्द संस्करण

हर जिल्द में हैं:

भौतिकी, रसायन, प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र,
प्राणी व्यवहार, सूक्ष्मजैविकी, गणित, इतिहास,
भूगोल-भूविज्ञान, वैज्ञानिकों की जीवनियां,
पढ़ाने के तरीके, बच्चों के साथ अनुभव,
प्रयोग-मॉडल एवं गतिविधियां,
सर्वे रिपोर्ट, कहानियां, पहेलियां
और
सवालीराम के सवाल-जवाब

संदर्भ अंक 1-6, 7-12, 13-18, 19-25 और 26-30 के सजिल्द संस्करण उपलब्ध हैं। इनके साथ है प्रकाशित अंकों का विषयवार इंडेक्स।

प्रत्येक का डाक-खर्च सहित मूल्य 65 रु.।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।
ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।
अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद, म. प्र. 461001
ई - मेल: eklavyahoshangabad@bigfoot.com

एकलव्य
ई - 1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016
ई - मेल: eklavyamp@vsnl.com

प्रमेयों की गुत्थियां सुलझाना

रामकृष्ण भट्टाचार्य

चितियां बनाने के लिए कितनी ज्यामिति की आवश्यकता थी?

सोमयज्ञ के लिए कई सारे पण्डाल लगाने पड़ते हैं, जिनके लिए बहुत बड़ी जगह की ज़रूरत पड़ती है। इसके लिए कई सारी अग्नियों, चितियों, वेदियों और मण्डपों की जटिल व्यवस्था भी ज़रूरी होती है। अगले पेज पर याज्ञिक क्षेत्र का एक रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें अनावश्यक संरचनाएं नहीं दर्शाई गई हैं। (देखिए चित्र-1)

यज्ञ क्षेत्र की जमावट

पश्चिम दिशा में स्थित अपेक्षाकृत छोटा घेरा (P) प्राग्वंश मण्डप कहलाता है। इसमें एक वृत्ताकार अग्नि (गार्हपत्य अग्नि, G) जिस पर बलि दिए गए जंतु को सर्वप्रथम पकाया जाता है। इसमें एक अर्द्ध वृत्ताकार अग्नि (दक्षिण अग्नि, D) भी होती है। एक वर्गाकार बलि वेदी, आहवनिया-अग्नि A होती है जिस पर अग्नि की स्थापना की जाती है। बड़े घेरे, M को महावेदी कहते हैं। इसकी आकृति एक समद्विबाहु समलंब के समान होती है और इसमें एक रेखा पूर्व से पश्चिम की ओर तथा दूसरी रेखा उत्तर से दक्षिण की ओर जाती है। इन्हें क्रमशः प्राची व उदिची कहते हैं। प्राची को पृष्ठ्या (पृष्ठ यानी पीठ) भी कहा जाता है। एक मायने में यह महावेदी की रीढ़ है। यह सममिति की रेखा है। महावेदी का निर्माण यज्ञ शुरू हो जाने के बाद

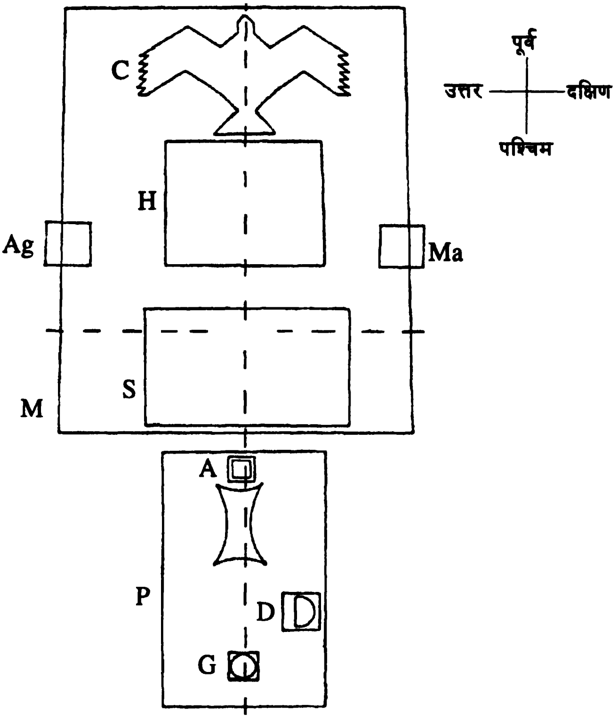

चित्र:1 यज्ञक्षेत्र का रेखाचित्र

किया जाता है। यह एक नवीन बलि वेदी होती है जो पुरानी का स्थान ले लेती है। चित्र में नई वेदी को धुर पूर्व में दर्शाया गया है। इसका आकार एक बाज़ (श्येन) के समान है जिसके डैने मुड़े हुए हैं और पूंछ फैली हुई (वक्रपक्ष व्यस्तपुच्छ) है। अलबत्ता यह वेदी अन्य आकृतियों में भी बनाई जा सकती है। इसकी आकृति दरअसल यजमान की मनोकामना पर निर्भर है। मसलन, यदि वह ब्रह्मलोक प्राप्त करना चाहता है, तो चिति कूर्म (कछुए) के आकार की बनाई जाएगी। यदि उसे शत्रुओं को पछाड़ाना है तो चिति का आकार रथचक्र के समान होगा क्योंकि वेदों में कहा गया है, "रथ किसी वज्र के समान है जिसे यजमान अपने शत्रुओं पर फेंकता है।" बहरहाल, श्येन तो प्रकृति है और यह ऐसी समस्त चितियों का प्रतिनिधित्व करती है।

महावेदी के अंदर आयताकार घेरा S सदस कहलाता है। यह मंत्रोच्चार कक्ष है। मध्य में निर्मित वर्गाकार घेरा H हविर्धान कहलाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'बलि संग्राहक'। यह वह स्थान है जहां सोम वनस्पति लाने वाले वाहनों को रखा जाता है और अनुष्ठान के दौरान इन पौधों को पीसा जाता है। महावेदी के उत्तर व दक्षिण की ओर एक-एक वर्गाकार घेरा है (Ag तथा Ma) जिन्हें क्रमशः अग्निघ्रिया तथा मार्जालिया मण्डप कहते हैं।

अग्नियों के विविध उल्लेख

यज्ञ क्षेत्र का इतना विवरण पर्याप्त होगा। इन्हीं अग्नियों आदि के निर्माण हेतु ही शायद शुल्व ज्यामिति और मापन अस्तित्व में आए थे। यहां यह कहना लाज़िमी है कि विभिन्न शुल्व सूत्रों में कम-से-कम छः अग्नियों का उल्लेख है।

बौधायन में इन सभी का नाम सहित उल्लेख है जबकि मानव में 4 व अपस्तंब में 2 का उल्लेख है और कात्यायन में एक का भी उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार से सूत्रों में तेरह प्रकार की चितियों का उल्लेख है (मानव में समस्त तेरह, बौधायन में सात, अपस्तंब में छः और कात्यायन में एक)। चितियां मूलतः बारह प्रकार की हैं। किंतु कई प्रकारों में एक से अधिक प्रकार सम्मिलित होते हैं। यदि इन्हें अलग-अलग गिना जाए तो चितियां अट्ठारह प्रकार की होंगी। बौधायन में एक को छोड़ शेष समस्त का उल्लेख है। जिसका नाम वहां नहीं है वह सुपर्णचिति है जो काल्पनिक पक्षी गरुड़ के आकार की होती है। अपस्तंब और मानव दोनों में ग्यारह-ग्यारह चितियों का उल्लेख है जबकि कात्यायन में एक का भी नहीं।

समस्त अनुष्ठानों में इस बात का ध्यान रखना होता है कि धर्मग्रंथों में निर्धारित नियमों का कठोरता से पालन किया जाए। तनिक-सा भी विचलन पूरे प्रयास को निष्फल या हानिकारक भी बना सकता है। विभिन्न वैदिक पंथों के श्रौतसूत्रों में निर्देश दिए गए हैं जिनका कड़ाई से पालन करना होता है। किन्तु अग्नि आदि के निर्माण के नियमों में एकरूपता नहीं है। उदाहरणार्थ, एक मत के अनुसार गार्हपत्य अग्नि वृत्ताकार होनी चाहिए जबकि एक अन्य मत के अनुसार इसे वर्गाकार होना चाहिए। अलबत्ता, आकृति कुछ भी हो मगर इसका आकार समान होना चाहिए – 1 वर्ग व्यायाम (9216 वर्ग अंगुल)। आहवनिया अग्नि वर्गाकार होती है तथा दक्षिण अग्नि अर्द्ध-वृत्ताकार। किंतु इन दोनों का आकार समान होना चाहिए – 1 वर्ग व्यायाम। जैसा कि पहले बताया गया, महावेदी समद्विबाहु समलंब की आकृति में होती है। इसका आकार

निम्नानुसार होता है: फलक 24 पद (या एक अन्य मतानुसार 24 प्रक्रम) लंबा, आधार 30 पद (या 30 प्रक्रम) और ऊंचाई 36 पद (या 36 प्रक्रम)। सूत्रभति वेदी भी इसी आकृति की होगी किन्तु इसका क्षेत्रफल महावेदी से एक तिहाई होगा।

ईंटें, ज्यामिति और प्रमेय

इसके बाद हम आते हैं ईंटों पर। ये ईंटें भी विभिन्न आकृतियों व आकारों की हैं। कुछ ईंटें सरलरेखीय होती हैं जैसे तिकोन, चौकोन, पंचभुज व षट्भुज। चौकोन में भी वर्ग, आयत, समांतर चतुर्भुज, समलंबक आदि विविध आकृतियों की ईंटें हो सकती हैं। कुछ ईंटें ऐसी भी होती हैं जो एक तरफ से वक्राकार होती हैं जबकि शेष तीन पक्ष सरल रेखीय होते हैं।

हर चिति की अपनी अनोखी शक्ल होती है किंतु प्रत्येक का क्षेत्रफल 7.5 वर्ग पुरुष (1,08,000 वर्ग अंगुल) होना चाहिए। इसके प्रत्येक प्रस्तर (परत) में 200 ईंटें होनी चाहिए और कुल पांच प्रस्तर होने चाहिए। अर्थात् प्रत्येक चिति में 1000 ईंटें होनी चाहिए – न एक कम, न एक ज़्यादा। एक छोड़कर शेष समस्त चितियों की ऊंचाई घुटने (जानु) के बराबर होनी चाहिए। एक बार चिति का निर्माण हो जाने के बाद यदि यजमान एक और काम्येष्टि (किसी मनोकामना की पूर्ति के लिए दी जाने वाली बलि) करना चाहे तो उसे चिति के क्षेत्रफल में 1 पुरुष की वृद्धि करना होती है। इसी प्रकार से एक-एक मनोकामना के लिए एक-एक पुरुष बढ़ाते हुए चिति का क्षेत्रफल 101.5 पुरुष तक बढ़ाया जा सकता है।

इस सबके लिए निम्नलिखित बातों पर अच्छी पकड़ होनी चाहिए:

1. किसी दी गई रेखा को बराबर लंबाई के खण्डों में बांटना।
2. किसी दी गई सरल रेखा से समकोण बनाती दूसरी सरल रेखा खींचना।
3. एक ऐसा वर्ग बनाना जिसकी लंबाई दी गई है।
4. दी गई लंबाई-चौड़ाई का आयत बनाना।
5. दी गई भुजाओं व झुकाव के आधार पर समांतर चतुर्भुज बनाना।
6. विषमबाहु त्रिभुज बनाना।
7. दो बिंदुओं के बीच बने वृत्त का केन्द्र बिंदु पता लगाना।
8. दिए गए वृत्त के अंदर बनाए जा सकने वाले बड़े-से-बड़े वर्ग को बनाना।

वर्ग बनाने के तरीके

यहां स्थानाभाव के कारण हम इनमें से प्रत्येक प्रमेय की चर्चा नहीं कर पाएंगे। अत: हम एक समस्या (समस्या

क्रमांक 3) को चुनकर उसकी चर्चा करेंगे। शुल्व सूत्रों में वर्ग बनाने की एक-दो नहीं, पूरी पांच विधियां बताई गई हैं। संभवतः आपस्तंब में वर्णित विधि सबसे प्राचीन होगी। यह विधि निम्नानुसार है: "बांस की एक छड़ (वेणु) में दो छेद करें। इन दो छेदों के बीच उतनी ही दूरी हो जितनी दोनों भुजाएं उठाकर यजमान की ऊंचाई है (अर्थात 1 पुरुष =120 अंगुल)। इन दो छेदों के बीचों-बीच एक तीसरा छेद कर दो। वेणु को पूर्व-पश्चिम रेखा (पृष्ठ्या) पर रखकर उसके छिद्रों में शंकु लगा दो। अब पश्चिम की ओर के दो शंकु हटाकर वेणु को विपरीत छोर के छिद्र से उत्तर-पूर्वी दिशा में घुमाकर एक वृत्त बना लो। अब पूर्वी शंकु को हटाकर पश्चिमी छिद्र में शंकु लगाकर विपरीत छोर के छिद्र से दक्षिण-पश्चिम दिशा में वेणु को घुमाकर एक और वृत्त बना लो। अब वेणु को पूरी तरह स्वतंत्र करके पुनः इस तरह जमाओ कि सिरे का सुराख मध्य बिन्दु पर रहे। इसे दो वृत्तों के कटान बिन्दु पर दक्षिण की ओर रखो और सबसे बाहर के छिद्र के बिंदु पर एक शंकु लगा दो। इस शंकु पर वेणु का मध्य बिंदु जमाओ और वेणु को वृत्तों की परिधि पर जमा दो। अब बाहरी छिद्रों में एक-एक शंकु लगा दो। यही एक पुरुष की भुजा का वर्ग है।"

शुल्व की शब्दावली से नावाकिफ व्यक्ति के लिए तो यह कोई कूट संदेश-सा है या किसी पेचीदा गुत्थी-सा है जिसे सुलझाया जाना है। किन्तु यदि हम इस वक्तव्य का यूक्लिड की समतल ज्यामिति की परिचित भाषा में 'तर्जुमा' कर दें तो पूरी क्रिया एकदम सीधी-सादी नज़र आएगी। इस तरह 'अनुवाद' के बाद यह बात कुछ इस तरह कही जाएगी (चित्र-2):

"AB एक सरल रेखा है और C इसका मध्य बिंदु है। इस पर एक वर्ग बनाया जाना है। A व B बिन्दुओं से AB त्रिज्या के दो चाप विपरीत दिशाओं में खींचो। ये चाप परस्पर D बिंदु पर काटते हैं। बिंदु C व D को

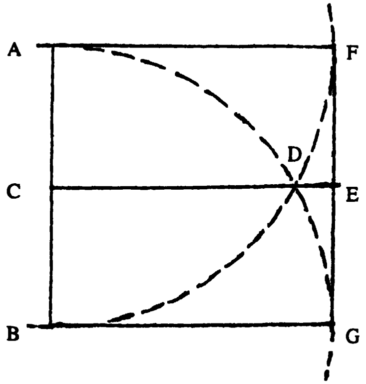

चित्र:2 बांस की खपच्ची की मदद से वर्ग बनाने की एक विधि। जिसके तहत दी गई त्रिज्या के दो चाप खींचकर वर्ग बनाते हैं।

चित्र:3 रस्सी की मदद से वर्ग बनाने की एक विधि के शुरुआती चरण

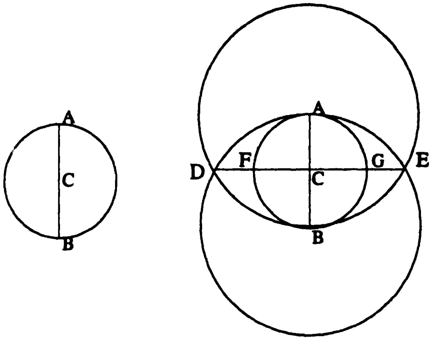

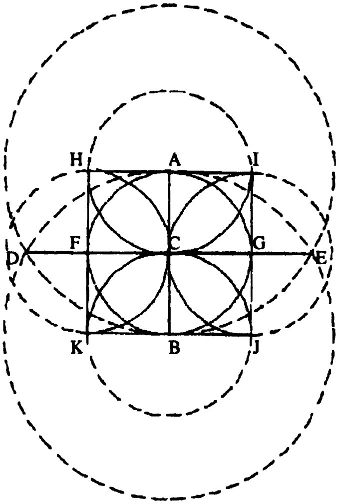

चित्र:4 रस्सी की मदद से वृत्त खींचकर उनसे वर्ग बनाने की विधि का अंतिम चरण जिसमें वर्ग बन जाता है। आकृति स्पष्ट करने के लिए यह चित्र बड़ा करके दिखाया गया है।

जोड़ दो तथा D को बिन्दु E तक इस तरह आगे बढ़ाओ कि CE = AB। बिन्दु F व G को इस तरह जोड़ो कि सरल रेखा FG बिन्दु C से होकर गुज़रे। AF और BG को जोड़ दो। AFGB ही वांछित वर्ग है।"

आइए अब एक अन्य विधि देखते हैं जिसमें बांस की खपच्ची के स्थान पर रज्जु (रस्सी) का इस्तेमाल होता है। बौधायन शुल्वसूत्र के इस उद्धरण का अक्षरशः अनुवाद प्रस्तुत न करके हम यहां वर्तमान स्वरूप में उसका भावार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं:

"AB एक सरल रेखा है जो वांछित

वर्ग की एक भुजा की लंबाई के बराबर है। C इसका मध्य बिंदु है। C को केन्द्र मानकर तथा CA (= CB) को त्रिज्या मानकर एक वृत्त खींचो जो बिंदु A व B को स्पर्श करेगा। A और B को केन्द्र व AB को त्रिज्या मानकर दो और वृत्त खींचो। ये वृत्त एक-दूसरे को बिंदु D व E पर काटेंगे। (चित्र-3)

D E को इस तरह जोड़ो कि यह रेखा C से होकर गुज़रे तथा दो वृत्तों को बिंदु F व G पर काटे।

अब चार वृत्त खींचो जिनकी त्रिज्या CA के बराबर हो तथा केन्द्र बिंदु क्रमशः A, B, F व G। ये चार वृत्त बिंदु H, I, J व K पर एक-दूसरे को काटेंगे। H I, I J, J K और KH को जोड़ दो। HIJK ही वांछित वर्ग है।" (चित्र-4)

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि अनुष्ठान हेतु बनी संरचनाएं अलग-अलग आकृतियों में हो सकती थीं किन्तु इनका आकार (साइज़) एक ही होना चाहिए। इसके लिए एक सरल रेखीय आकृति को अन्य सरलरेखीय आकृति में बदलने और किसी वक्ररेखीय आकृति (खासकर किसी वृत्त) को समान क्षेत्र फल की सरल रेखीय आकृति में बदलने की क्षमता ज़रूरी है। उपरोक्त से विपरीत क्रिया भी करनी पड़ सकती है। इन क्रियाओं को निम्नांकित प्रमेयों का रूप दिया जा सकता है:

09. किसी आयत को बराबर क्षेत्रफल के वर्ग में बदलना।
10. किसी चतुरस्र (आयत या वर्ग) को बराबर क्षेत्रफल के त्रिभुज में बदलना।
11. किसी समद्विबाहु समलंब को बराबर क्षेत्रफल के वर्ग में बदलना।
12. किसी समचतुर्भुज को बराबर क्षेत्रफल के वर्ग में बदलना।
13. किसी वर्ग को क्षेत्रफल में बराबर वृत्त में बदलना।

चतुर्भज से त्रिभुज बनाना

यहां भी हम कुछ चुनिंदा उदाहरणों पर ही चर्चा करेंगे। पहले हम समस्या क्रमांक 10 को लेते हैं अर्थात् चतुर्भुज को बराबर क्षेत्रफल के त्रिभुज में बदलना।

वर्ग का कर्ण AC खींचो और AC को एक भुजा मानकर ACEF वर्ग बनाओ। अब वर्ग की भुजा FA का मध्य बिंदु ज्ञात करो। GC व GE को जोड़ो। GCE ही वांछित समद्विबाहु त्रिभुज है। (चित्र-5)

यदि शुरुआत आयत से करनी हो तो पहले आयत को वर्ग में बदलना होगा और फिर शेष क्रिया उपरोक्तनुसार होगी।

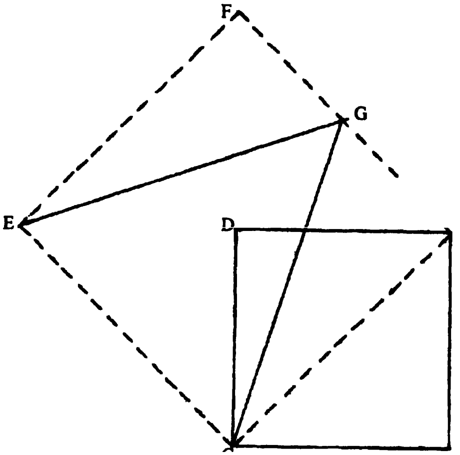

चित्र:5 चतुर्भुज को बराबर क्षेत्रफल के त्रिभुजों में बदलना। वर्ग का कर्ण AC खींचो और AC को एक भुजा मानकर ACEF वर्ग बनाओ। अब वर्ग की भुजा FA का मध्य बिंदु ज्ञात करो। GC व GE को जोड़ो। GCE ही वांछित समद्विबाहु त्रिभुज है।

इसका प्रमाण भी आसान है। चूंकि

$AC = \sqrt{2}\,a \qquad (AB = a)$

और त्रिभुज GCE की ऊंचाई

$AC = \sqrt{2}\,a$

और क्षेत्रफल

$= 1/2 \times \sqrt{2}\,a \times \sqrt{2}\,a$

$= 1/2 \times 2a^2 = a^2 =$ वर्ग का क्षेत्रफल।

और प्रमेय 13 में प्रस्तुत समस्या को देखें। यह तो सर्वविदित है कि क्षेत्रफल समान रखते हुए किसी वृत्त को वर्ग में बदलना या वर्ग को वृत्त में बदलना स्केल और कंपास की मदद से संभव नहीं है। यानी यूक्लिड ज्यामिति की सीमाओं में इस समस्या को नहीं सुलझाया जा सकता। बौधायन शुल्वसूत्र में वर्णित विधि में भी एक सन्निकटन ही किया गया है हालांकि सन्निकटन हमें मनचाही स्थिति के बहुत करीब ले जाता है। विधि इस प्रकार है।

वृत्त का वर्ग

ABCD एक वर्ग है जिसकी भुजा a है। कर्ण AC खींचकर उसका मध्य बिंदु (O) ज्ञात कीजिए। अब O को केन्द्र तथा OA को त्रिज्या मानकर चाप AB खींचिए। बिंदु E रेखा AB का मध्य बिंदु है। OE को जोड़ दीजिए और इसे F तक आगे बढ़ा दीजिए। EG=1/3 FE लेकर तथा O को केन्द्र व OG त्रिज्या मानते हुए एक वृत्त GRSP खींचिए। यही वांछित वृत्त है। (चित्र-6)

आइए इसका प्रमाण देखें:

r (वृत्त GRSP की त्रिज्या)

= OG = OE + EG

$$= \frac{a}{2} + \frac{EF}{3}$$

$$= \frac{a}{2} + \frac{OF - OE}{3}$$

$$= \frac{a}{2} + \frac{1}{3}\left(\frac{\sqrt{2}}{2} \times a - \frac{a}{2}\right)$$

$$\left[OF = OA = \frac{\sqrt{2}\,a}{2}\right]$$

$$= a\left(\frac{1}{2} + \frac{1}{3\sqrt{2}} - \frac{1}{6}\right)$$

$$= a \times 2\left(\frac{\sqrt{2}+1}{6\sqrt{2}}\right)$$

$$= a \times \left(\frac{\sqrt{2}+1}{3\sqrt{2}}\right)$$

अब$\sqrt{2}$ का मान 1.4142135 और पाई = 22/7 लें तो वृत्त का क्षेत्रफल होगा:

$$\pi r^2 = 22/7 \times a^2 \times \left(\frac{\sqrt{2}+1}{3\sqrt{2}}\right)^2$$

$$= a^2 \times 22/7 \left(\frac{3+2\sqrt{2}}{18}\right)$$

$$= a^2 \times \frac{11}{63} (3+2 \times 1.4142135 .....)$$

$$= a^2 \times \frac{11}{63} (5.828427 ...)$$

$$= a^2 \times \frac{64.112697}{63}$$

$$= a^2 \times 1.017661857 ....$$

हम कुछ ऐसे प्रमेय और प्रतिपादित कर सकते हैं जिनमें नई संरचना की आकृति वही होगी किन्तु क्षेत्रफल अलग होगा।

14. किसी दिए गए वर्ग से दुगने क्षेत्रफल का वर्ग बनाना।

15. दिए गए वर्ग से तिगुने क्षेत्रफल का वर्ग बनाना।

16. किन्हीं दो वर्गों के क्षेत्रफल के योग के बराबर क्षेत्रफल का वर्ग तैयार करना।

चित्र:6 क्षेत्रफल समान रखते हुए वर्ग को वृत्त में बदलना।

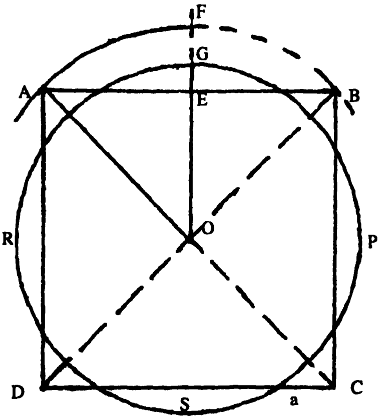

17. किन्हीं दो वर्गों के क्षेत्रफल में अंतर के बराबर क्षेत्रफल का वर्ग तैयार करना।

आइए प्रमेय 16 को देखें। इसके संदर्भ में बौधायन के निर्देश अत्यंत स्पष्ट व कामकाजी हैं। (देखिए चित्र-7)

बड़े वर्ग में छोटे वर्ग की भुजा के बराबर एक आयताकार टुकड़ा काटो। इस आयत का कर्ण सम्मिलित वर्ग (अर्थात वांछित वर्ग) की भुजा होगी। आधुनिक ज्यामिति की भाषा में इसे कुछ इस तरह लिखा जाएगा:

माना कि ABCD बड़ा और PQRS छोटा वर्ग है। PQ के बराबर AE और DF काटिए। बिन्दु E को F से तथा A को F से जोड़िए। वर्ग AGHF खींचिए। वर्ग AGHF क्षेत्रफल में ABCD व PQRS के क्षेत्रफल के योग के बराबर है।

और अब चर्चा करते हैं ऐसी आकृतियों के निर्माण की जो क्षेत्रफल में किसी अन्य आकृति के बराबर हों।

18. दी गई भुजाओं वाला एक ऐसा समद्विबाहु समलम्ब बनाना जिसका क्षेत्रफल दिए गए वर्ग या आयत के बराबर हो।

19. एक ऐसा समान्तर चतुर्भज बनाना जिसका क्षेत्रफल किसी वर्ग या आयत के बराबर हो।

20. दो पंचभुजों के समतुल्य वर्ग बनाना।

वर्ग के बराबर समद्विबाहु समलंब

हम यहां प्रमेय 18 की चर्चा करेंगे। माना कि ABCD एक वर्ग है और समलम्बक की भुजा PQ दी गई है। PQ की लम्बाई AB से कम है। (देखिए चित्र-8)

बिन्दु A व D को केन्द्र तथा PQ को त्रिज्या मानते हुए दो चाप खींचिए जो AB व DC को क्रमशः बिन्दु R व S पर काटें। RS व RC को जोड़ दीजिए।

चित्र:7 किन्हीं दो वर्गों के क्षेत्रफल के योग के तुल्य क्षेत्रफल का वर्ग तैयार करना।

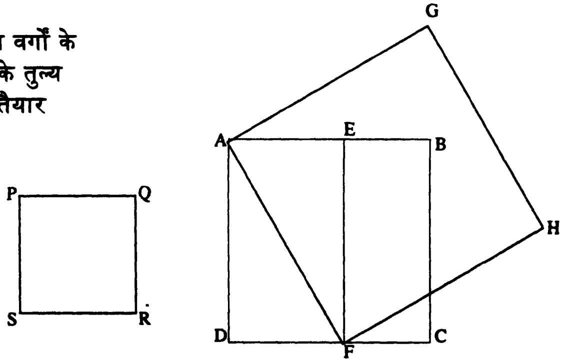

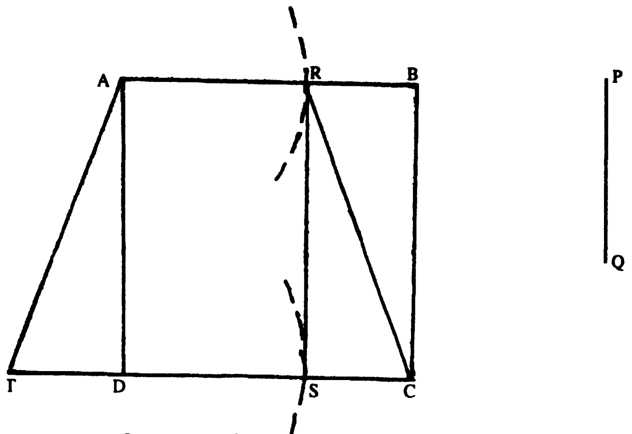

चित्र:8 एक ऐसा समद्विबाहु समलब बनाना जिसका क्षेत्रफल दिए गए वर्ग के बराबर हो।

समकोण त्रिभुज RCS लेकर, उसे पलटाकर AD पर रख दीजिए। एक त्रिभुज ADT बनेगा और ARCT इच्छित समलम्बक होगा।

त्रिभुज RCS को पलटाने की क्रिया आसानी से की जा सकती है। रेखा CD को T तक बढ़ाइए ताकि DT=SC हो। अब बिन्दु A और T को जोड़ दीजिए। ARCT समलम्बक तैयार है। इसका प्रमाण स्वतः स्पष्ट है।

चार शुल्वसूत्रों से इस तरह के अन्य प्रमेय भी बनाए जा सकते हैं और वे भी कम रोचक न होंगे। किन्तु अब हम उक्त रचनाओं को बनाने में लगने वाली ईंटों पर ध्यान देंगे। दरअसल ये ईंटें ही शुल्व सूत्रों की ज्यामिति और मापन को आकर्षक बनाती हैं। अग्नियों, वेदियों व चितियों के निर्माण में ईंटों की ज़रूरत होती है। यदि हम चिति-निर्माण से शुरू करें तो अधिक रुचिकर होगा। हम विभिन्न चितियों के नाम तो बता ही चुके हैं और उनमें से कुछ की आकृतियां भी दर्शा चुके हैं। अगले अंक में हम इन चितियों को एक साथ रखकर इनके विकास के क्रम को भी देखेंगे।

रामकृष्ण भट्टाचार्य: आनंद मोहन कॉलेज, कलकत्ता के अंग्रेज़ी विभाग में रीडर तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम में अतिथि लेक्चरर। विज्ञान लेखन में रुचि।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। साथ ही स्वतंत्र विज्ञान लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

'स्कूली शिक्षा में सुधार' विषय पर सेमिनार के लिए आधार पत्र का आमंत्रण

आगा खान फाउण्डेशन यूरोपीय संघ और अन्य गैर सरकारी संस्थाओं के सहयोग से स्कूली शिक्षा में बेहतरी लाने के लिए PESLE (Programme for Enrichment of School Level Education) नामक कार्यक्रम चला रहा है। इस कार्यक्रम के तहत 'स्कूली शिक्षा में सुधार' विषय पर दिसम्बर, 2000 में एक राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया जा रहा है। इस सेमिनार का उद्देश्य फील्ड स्तर पर किए जा रहे नवाचारपूर्ण प्रयोगों के लिए स्थानीय पहल, उसके अनुभवों और उससे जुड़े विशेष अध्ययनों आदि का शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे संगठनों से आदान -प्रदान करना है। यहाँ नवाचारपूर्ण प्रयोगों से आशय ऐसे प्रयोगों से है जो स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में लम्बे समय तक अपना प्रभाव डालने का सामर्थ्य रखते हों।

उपरोक्त विषयों पर ज़मीनी स्तर के गैर सरकारी संगठनों, शोध संस्थानों, शोधकर्ताओं या सरकारी संगठनों द्वारा स्थानीय स्तर पर व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से की गई पहल पर आधार पत्र (Strategy Paper) आमंत्रित किए जाते हैं। प्राथमिकता ऐसे केस अध्ययनों, अनुभवों को दी जाएगी जो फील्ड स्तर पर इस क्षेत्र में काम करते समय आने वाली समस्याओं को बेहतर तरीके से व्याख्यापित करते हों। साथ ही जो ऐसे प्रयोग करने वालों और नीति निर्धारकों के लिए एक सीखने का अनुभव साबित हों। इससे हमें ऐसे प्रयासों का नेटवर्क बनाने और भागीदारी बढ़ाने की संभावनाओं का पता लगाने में भी मदद मिलेगी।

आधार पत्र हस्तलिखित या टाईप किया हुआ हो सकता है। अच्छा होगा यदि यह हिन्दी या अंग्रेज़ी भाषा में लिखा हो। पत्र में संगठन/समूह की पृष्ठभूमि, भौगोलिक क्षेत्र और समुदाय (जिसके साथ आप काम कर रहे हैं) का विवरण, कार्यक्रम की विषयवस्तु का विवरण, अनुदान के स्रोत, अपनाई गई रणनीतियाँ, असफलताएँ, उपलब्धियाँ और भावी योजनाओं का ज़िक्र अवश्य होना चाहिए। प्रस्तुत किए जाने वाले पत्र में आपके संगठन के द्वारा की गई पहल के दौरान चर्चित सफलताओं, असफलताओं और चुनौतियों पर अवश्य प्रकाश डाला जाए।

कृपया ध्यान रखें कि प्राप्त सभी आधार पत्रों में से कुल 30 पत्रों को राष्ट्रीय सेमिनार में प्रस्तुतिकरण के लिए चुना जाएगा। चुनिन्दा आधार पत्रों को प्रकाशित भी किया जाएगा। आपके द्वारा भेजा गया आधारपत्र आगा खान फाउण्डेशन के पास 31 **अक्टूबर**, 2000 तक हर हालत में पहुँच जाना चाहिए।

आधार पत्र भेजने और किसी भी प्रकार की अन्य जानकारी, सहायता, स्पष्टीकरण और पूछताछ के लिए पता निम्नलिखित है :

सुश्री चारू आनन्द

कार्यक्रम अधिकारी (PESLE), आगा खान फाउण्डेशन,

सरोजिनी हाउस, द्वितीय तल, 6, भगवान दास रोड, नई दिल्ली – 110 001

फोन : 011–3782173, 3782157, 3782185

फैक्स : 011-3782174 attn : NSSRS ई-मेल : pesle@satyam.net.in

विज्ञापन

पूर्वी बंगाल में कृषि विस्तार एवं इस्लामीकरण

रिचर्ड ईट

संपादन व रूपांतरण – गौतम पांडेय

पिछले अंक में हमने रिचर्ड ईटन का एक लेख दिया था जिसमें भारत में इस्लाम के फैलने से संबंधित प्रचलित विचारों की समीक्षा थी।
प्रस्तुत लेख में ईटन पूर्वी बंगाल में इस्लाम के प्रसार को वहां 17वीं शताब्दी से हो रहे व्यापक सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में प्रस्तुत कर रहे हैं। लोगों के जीवन-यापन और रहन-सहन में जब मूलभूत परिवर्तन होते हैं, वे ही धार्मिक विचारों में परिवर्तन के भी संदर्भ स्थापित करते हैं।

मुगल सरकार और कृषि व्यवस्था

अकबर के समय से ही मुगलों ने हिन्दुस्तानियों को अपनी राजनैतिक व्यवस्था में दो स्तर पर जोड़ने की कोशिश की। शीर्ष पर तो उन्होंने मुसलमान व गैर-मुसलमान दोनों तरह के नायकों (Chieftains) को शाही सेवा में जोड़ा जिससे उनके राज्य के संभावी दुश्मन आज्ञाकारी सेवकों के रूप में तब्दील हो गए। साथ ही उन्होंने जंगल की ज़मीनों को खेती के लायक बनाकर व जंगलों में रहने वाले खानाबदोश लोगों को स्थाई रूप से कृषक बनाकर अपने राज्य के कृषि आधार और सम्पत्ति को बढ़ाने की भी कोशिश की। 18वीं सदी का एक राजस्व संबंधी दस्तावेज़ बताता है कि:

"शाहजहां (1627–58) के काल से ही परंपरागत रूप से लकड़हारे व हरवाहे सेना के साथ चलते थे जिससे

खेती के लायक बन जाने के बाद वह इस ज़मीन की उपज का इस्तेमाल मस्जिद के खर्चे तथा अपनी, अपने वंशजों व आश्रितों की देखभाल पर करेंगे। साथ ही वे इस शक्तिशाली साम्राज्य की सलामती की दुआ भी करते रहेंगे।

औरंगज़ेब की मुहर के साथ चटगांव से प्राप्त एक सनद, सन् 1666

कि जंगलों की सफाई कर खेती की जा सके। ... ऐसा एक सामान्य आदेश था कि जो कोई भी जंगल काटकर खेत तैयार करेगा वो उस ज़मीन का ज़मींदार होगा। ... इन ज़मींदारों को सरकार की तरफ से हल भी दिए जाते थे जिनकी कीमत दो-तीन सालों में वापस ले ली जाती थी। इस तरह के अच्छे व्यवहार से रियाया व किसानों को आकर्षित किया जाता था ताकि वे दूसरे सूबों से वहां आकर बसें और खेत तैयार करें।" (हकीकत-ए-सूबा बिहार – 1765)

अगर ऐसी नीति थी तो बंगाल में ये कैसे लागू हो रही थी? पश्चिमी व उत्तर-पश्चिमी बंगाल में प्राचीन काल से बसे हुए ज़्यादातर किसान हिन्दू थे। वहां मुगल पुराने ज़मीदारों और कायस्थों के ज़रिए पुरानी दर पर ही लगान लेते रहे। लेकिन पूर्व और दक्षिण के जंगली व दलदली इलाकों में इन्होंने स्थानीय प्रभावशाली लोगों को केन्द्र बनाकर किसानों की बस्ती बसाने को बढ़ावा दिया। किसी के प्रभावशाली होने का आधार ज़्यादातर धार्मिक होता था क्योंकि सरकार ऐसे लोगों को बढ़ावा देना चाहती थी जो स्थाई और भरोसेमंद संस्थाओं से जुड़े हों। स्थानीय स्तर पर मस्जिद व दरगाह मुगल हुकूमत की सबसे बुनियादी इकाई बनी।

ग्रामीण बंगाली समाज में मस्जिदों की भूमिका

पूर्वी बंगाल के 'गांव' शेष भारत के गांवों की तरह एक सघन बस्ती के रूप में नहीं थे। घर नदी-धाराओं के किनारे ऊंचे भाग में कतारों में बसे थे या फिर दूर-दूर बिखरे हुए थे। ऐसे में समाज को संगठित बनाए रखना खासा मुश्किल हो जाता है। इस संदर्भ में रेल्फ निकोलस कहते हैं:

"किसी भी सीमांत प्रदेश में सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना एक विषम समस्या है। निचले डेल्टा के लोग अपनी अक्खड और स्वतंत्र प्रकृति के लिए प्रसिद्ध हैं और ज़मीन पर स्वामित्व स्थापित करने के लिए लाठी का प्रयोग आम बात है। ... ऐसा प्रतीत

होता है कि इस अराजक सीमांत समाज को वैष्णव धर्म और इस्लाम की धार्मिक संस्थाओं ने हुकूमत के बिंदु प्रदान किए। वैष्णवों में इसे मण्डली कहते थे जो एक गोसांई के इर्द-गिर्द बने।''

मुसलमानों में ये किसी मुल्ला या पीर के इर्द-गिर्द बने मिल्लत थे। एक मिल्लत के लोग त्यौहारों में मिलते हैं, साथ नमाज़ पढ़कर, भोजन करते हैं; व एक दूसरे की शादी गमी आदि में भाग लेते हैं। मुल्ला इस समूह को नेतृत्व प्रदान करता है और उसे उस मिल्लत के सभी परिवार मासिक चंदा देते हैं।

आज के ग्रामीण बंगाली समाज में भी मस्जिदों की सामाजिक महत्ता शायद उस समय की ही देन है जब पीर या मुल्ला या मस्जिद या मज़ार एक सत्ता के रूप में उभरे और जिनके इर्द गिर्द नए किसान समुदाय आश्रितों के रूप में जुड़े। ये लोग इन धार्मिक नेताओं या संस्थाओं से न केवल आराधकों के रूप में जुड़े, बल्कि उनकी ज़मीनों पर खेती भी करते थे। इनमें से अधिकांश पहले हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के बाहर मछली पकड़ने का काम या झूम खेती करते थे।

इस तरह बंगाल में इस्लामीकरण मुगलकाल में वहां के कृषि विस्तार के कारण हुए सामान्य परिवर्तनों का केवल एक पहलू था। इस प्रक्रिया का अध्ययन हम डेल्टा के पूर्वी किनारे पर स्थित दो ज़िलों चटगांव और सिल्हट से प्राप्त कुछ खास फारसी दस्तावेज़ों की जांच के आधार पर कर सकते हैं।

चटगांव के ग्रामीण इलाकों में मस्जिदों व मज़ारों का विकास (1666–1760)

13वीं सदी में बसा चटगांव शहर 1666 में मुगलों के अधीन हुआ। मुगल अधिकार के समय यह क्षेत्र घने जंगलों से घिरा था और वहां के निवासी अस्थाई झूम खेती करते थे।

अबुल फज़ल के अनुसार चटगांव के अंदरुनी इलाकों के लोग गहरे रंग के थे और उनका धर्म न हिन्दू था, न इस्लाम। इनमें भाई-बहनों में आपस में शादी होती थी। साधू महात्मा इनके लिए ज्ञान के भंडार थे और वहां के लोग उन्हें 'वली' का दर्ज़ा देते थे और उनके कहे अनुसार चलते थे। इस तरह इस क्षेत्र में इस्लामीकरण उन लोगों का नहीं हुआ जो हिन्दू थे बल्कि उनका हुआ जिनका कोई खास धर्म नहीं था। यहां के लोगों में धार्मिक लोगों या 'वली' के कहे अनुसार चलने की प्रवृत्ति काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि आगे हम देखेंगे कि चटगांव के इन जंगलों में इस्लामी सभ्यता के शुरू के नुमाइंदे कृषि विस्तार से जुड़े ऐसे अगुआ थे जिन्हें यहां के लोगों ने 'वली' करार दिया गया था।

चटगांव की इस मुगल विजय में

6500 सैनिकों के अलावा हिन्दू व्यापारी और बाबू भी थे। इनमें से ज़्यादातर सैनिकों को इस सीमांत प्रदेश की सुरक्षा के लिए हमेशा के लिए रहना पड़ा। इन्हें इनकी सैनिक सेवा के बदले कर-मुक्त ज़मीनों के टुकड़े दिए गए जिस पर वे खेती कर या करवा सकते थे। बाद में चलकर इन्हीं सैनिकों के वंशज यहां के ज़मींदार या मुखिया कहलाए जाने लगे। इन्होंने खुद कृषि विस्तार का काम नहीं उठाया, बल्कि अन्य उद्यमी लोगों को यह काम करने की अनुमति दी।

मुगल विजय के पश्चात चटगांव के अंदरुनी इलाकों में काफी संख्या में मस्जिदों और मज़ारों का निर्माण हुआ। 1770 की एक ब्रिटिश रिपोर्ट से पता चलता है कि इस इलाके की सबसे अच्छी ज़मीनों के दो-तिहाई हिस्से धार्मिक अनुदान के रूप में 1666 के बाद दिए गए थे।

प्राप्त मुगल सनदों से पता चलता है कि इनके ज़रिए व्यापक रूप से जंगलों की ज़मीन का हस्तांतरण मस्जिद व मज़ारों के संरक्षक धार्मिक भद्रपुरुषों के पक्ष में हुआ। ये संस्थाओं को दिए जान वाले वक्फ अनुदान नहीं थे बल्कि संस्थाओं के संरक्षकों व उनके वंशजों को दिए गए थे जो व्यक्तिगत रूप से उस ज़मीन के मालिक बन गए।

इन सबका असर यह हुआ कि जंगल कटे और खेत बने जिनमें धान की खेती होने लगी और स्थानीय निवासी स्थाई कृषक बन गए। इस तरह ये स्थानीय लोग नए आए भद्रपुरुषों पर आर्थिक और धार्मिक रूप से आश्रित बन गए।

1666 से 1760 के बीच जंगल की ज़मीनों के लिए 288 कर-मुक्त अनुदानों की जानकारी मिलती है। ये मस्जिदों व दरगाहों के ट्रस्टी, मुस्लिम संत एवं हिन्दू मंदिरों के ट्रस्टी व ब्राह्मणों को दिए जाते थे। लेकिन कुल संख्या में से 262 अनुदान यानी 91 प्रतिशत मुस्लिमों को दिए गए थे। इसी तरह कुल 11,195.4 एकड़ जंगली ज़मीन यानी कुल ज़मीन का 87 प्रतिशत मुस्लिमों को मिला। सबसे अधिक अनुदान गांव की मस्जिदों के नाम दिए गए थे। ये मस्जिद मिट्टी, बांस, घास-फूस आदि की बनी होती थीं।

साथ दिए गए मानचित्रों से यह पता चलता है कि चटगांव शहर के पास मस्जिदों, दरगाहों और हिन्दू मंदिरों का फैलाव कितनी तेज़ी से हुआ। इन मानचित्रों से खेती के विस्तार का भी आभास मिलता है।

इन सनदों ने यहां की सामाजिक व्यवस्था को किस तरह आगे बढ़ाया होगा इसकी एक झलक है 2 अक्टूबर 1666 को चटगांव में जारी की गई एक सनद:

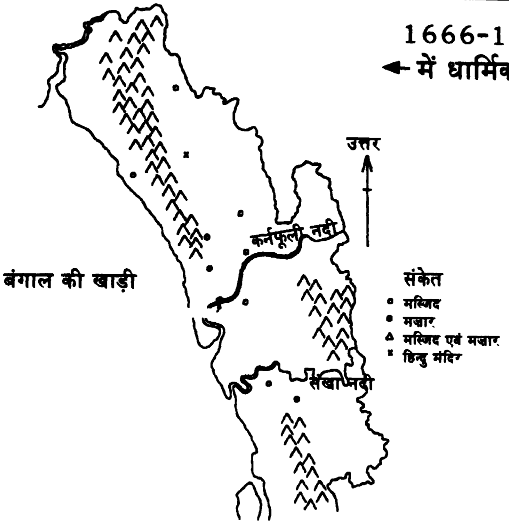

1666-1720 के बीच चटगांव
← में धार्मिक इमारतों का फैलाव

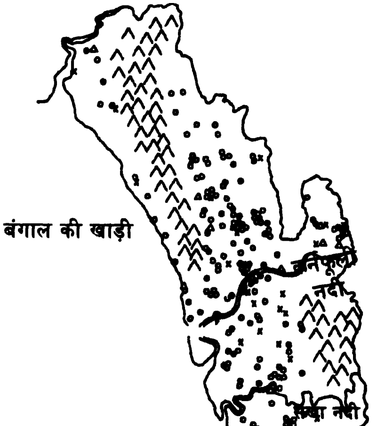

1666-1760 के बीच चटगांव
में धार्मिक इमारतों का फैलाव →

"शाह ज़ैनुल आबिदीन ने यह बताया है कि उन पर काफी लोग आश्रित हैं और उन्होंने एक मस्जिद भी बनवाई है जहां बड़ी संख्या में वहां के निवासी एवं फकीर आते-जाते हैं। लेकिन मस्जिद के रख-रखाव के लिए साधन नहीं होने के कारण वो चाहते हैं कि शासन उन्हें कुछ ज़मीन प्रदान करे।"

"उन्हें 166.4 एकड़ जंगल ज़मीन उस मस्जिद के रख-रखाव व उपरोक्त व्यक्तियों के जीवन-यापन के लिए दान में दी गई। खेती के लायक बन जाने के बाद इस ज़मीन की उपज से वे अपना, अपने आश्रितों व वंशजों तथा मस्जिद का भी रख-रखाव करेंगे। साथ ही वे इस शक्तिशाली साम्राज्य की सलामती के लिए दुआ भी करते रहेंगे। उन्हें या उनके वंशजों को इस ज़मीन पर कोई भी कर नहीं देना पड़ेगा।"

इन अनुदानों, सनदों को देने के पीछे आर्थिक उद्देश्य साम्राज्य का कृषि आधार बढ़ाना ही था जो कि इनकी भाषा से पता चलता है। और इनका धार्मिक उद्देश्य था देहाती इलाकों में इस्लामी धार्मिकता का प्रसार।

राजनैतिक रूप से इन अनुदानों का उद्देश्य इस सीमांत क्षेत्र में मुगल आधिपत्य की जड़ मज़बूत करना था। ऊपर वर्णित 1666 की सनद अनुदान प्राप्तकर्ता से यह आशा करती थी कि वह "लगन से सरकार की सलामती की दुआ करेगा।"

इनके अलावा राज्य का ध्यान 'अनुदानी के आश्रितों' की वफादारी जीतने पर भी रहता था। जिसे अनुदान मिलता था उसके आश्रित ज़मीन साफ करने व संस्था की स्थापना करने में मदद करते थे और उसकी ज़मीन पर खेती भी करते थे। अतः वे उस पीर या मुल्ला के स्थाई आश्रित बन जाते थे। कुछ दस्तावेज़ों में तो साफ-साफ लिखा है कि यह अनुदान फलां-फलां संत के अनुयायियों व वंशजों के जीवन-यापन के लिए है। कुल मिलाकर इस सीमांत क्षेत्र में सरकार ने मस्जिदों व दरगाहों को सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र स्वीकार कर लिया था और उन्हें अपने पर आश्रित बनाना चाहा था, जिस प्रकार उन संस्थाओं ने कृषकों को अपना आश्रित बनाया हुआ था।

कृषि विस्तार और चटगांव में धार्मिक भद्रजनों का उत्थान

मस्जिदों व दरगाहों की इस तरह सहायता कर चटगांव के मुगल शासक सीधे गांव के स्तर की राजनैतिक व्यवस्था तक पहुंच गए थे। आखिर उसी स्तर पर ऐसे लोग मिल सकते थे जो जंगलों की सफाई कर खेती बढ़ा सकते थे। 1798 में एक अंग्रेज़ अधिकारी फ्रांसिस बुखानन द्वारा किए

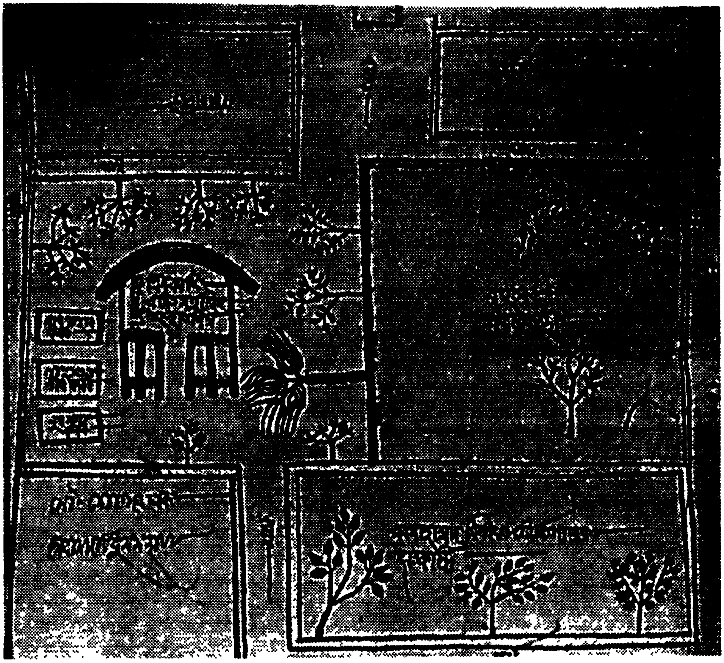

सुंदरपुर, फटिकचारी थाना, 1759 में घास-फूस से बनी एक मस्जिद के कागज़ाद (चटगांव ज़िला मुख्यालय रिकॉर्ड रूम)

गए सर्वे से यह पता लग पाया कि जंगल साफ करने का काम कैसे हो पाता था। वह बताता है, "सबसे पहले कोई दीवान या फौज़दार जैसा प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी अविकसित क्षेत्र को अपने नाम करवा लेता था। फिर कोई दूसरा व्यक्ति जिसके पास कुछ साधन होते थे उससे उस ज़मीन के किसी हिस्से के पट्टे के लिए आवेदन करता था। एक बार पट्टा मिल जाने के बाद वह व्यक्ति उस ज़मीन पर जंगल साफ कराने का काम शुरू करता था। लेकिन इसमें पैसे आदि से उसकी सहायता उस ज़मीन का वास्तविक मालिक या ज़मींदार ही करता था। जंगल कटने से लेकर खेती ढंग से शुरू करने में तीन से चार साल तक लग जाते थे।" इससे यह पता चलता है कि ज़मीन साफ करने का काम शासन की पहल पर न होकर किसी स्थानीय उद्यमी व्यक्ति की पहल पर होता था। दूसरे, इस पूरे काम में ज़मींदार या ज़मीन के वास्तविक मालिक द्वारा मज़दूरों आदि के लिए दिया गया एडवांस पैसा

काफी महत्वपूर्ण होता था। तीसरे स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति की भूमिका भी इसमें उतनी ही महत्वपूर्ण होती थी क्योंकि वह अविकसित ज़मीन अपने नाम करवाने के बाद उसे मज़दूरों में बांट देता था।

बुखानन की दी गई इस जानकारी को अगर हम 18वीं सदी की शुरू की जानकारियों से मिलाकर देखें तो काफी बातें समझ में आती हैं। बुखानन का 'स्थानीय उद्यमी व्यक्ति' शायद मुगल सनदों में वर्णित वो व्यक्ति होता था जिसे खेत तैयार करने संबंधित काम की ज़िम्मेवारी सौंपी जाती थी।

यह तय है कि इन लोगों ने यहां के जंगलों को धान के खेतों में तब्दील करने में तथा इस्लामी या मुगल संस्कृति को स्थानीय जंगली कबीलों या मूल निवासियों में फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन लोगों ने एक तरफ तो स्थानीय ज़मींदारों से जंगल साफ करने के अधिकार प्राप्त किए और दूसरी तरफ स्थानीय मज़दूरों को बटाईदार बनाया। शायद इन्हीं बटाई-दारों को बुखानन पट्टाधारी किसान कहता है और मुगल सनद इन्हें आश्रित कहते हैं। और आखिर में बुखानन और फारसी दस्तावेज़ों के अनुसार स्थानीय व्यवस्था में सबके ऊपर थे ज़मींदार या ज़मीनों के वास्तविक मालिक जिससे वो उद्यमी व्यक्ति ज़मीन का अधिकार लेता था।

बुखानन के वर्णन के अनुसार 1798 तक चटगांव के उपरी हिस्सों में इस्लामीकरण या कृषकीकरण कुछ ज़्यादा नहीं हो पाया था क्योंकि वह उत्तरी चटगांव की सीताकुण्ड पहाड़ियों पर रहने वाले आदिवासियों का विवरण देता है जो झूम खेती करते थे।

लेकिन जहां एक तरफ चटगांव के पहाड़ी इलाकों में स्थाई कृषि नहीं पहुंच पाई थी वहीं निचले क्षेत्रों में बुखानन के अनुसार लहलहाते खेतों ने प्राकृतिक जंगलों का स्थान ले लिया था। बुखानन यह भी बताता है कि "ज़्यादातर नए जुते हुए खेत हिन्दुओं के थे। हिन्दू, न्यायालयों या कलेक्टर के दफ्तर में अधिकारी हुआ करते थे और इस तरह मुसलमानों से ज़्यादा पैसे वाले थे। लेकिन चटगांव सूबे में जनसंख्या ज़्यादा मुसलमानों की ही थी।"

संक्षेप में कहें तो चटगांव में 1798 में भू-अधिकार व्यवस्था तीन स्तर की थी। सबसे ऊपर थे ज़मींदार जो मुख्यतः हिन्दू थे। ये राजाओं की तरह शहरों में रहते थे और उन्हें जंगल साफ करने के वास्तविक काम से कोई लगाव नहीं था। उसके बाद वे लोग जिन्हें बुखानन स्थानीय प्रभाव-शाली लोग कहता है। ये ज़मींदार से पट्टे पर जंगल की ज़मीन लेते थे व मज़दूरों का इंतज़ाम कर उसे साफ

कराते थे। ये या तो किसी धार्मिक समुदाय के लोग हो सकते थे या छोटे ज़मींदार जो कर-मुक्त ज़मीन प्राप्त करने के लिए धार्मिक स्थलों का निर्माण करवाते थे। यह वर्ग ज़्यादातर मुसलमान होता था और काफी उद्यमी भी होता था। सबसे आखिर में था मज़दूरों का समूह जो चार वर्ष तक जंगल साफ करने व खेत तैयार करने के बाद उसमें खेती करते थे। यहां यह ध्यान देने की बात है कि बुखानन ने जंगलों में रहने वाले लोगों को आदिवासी कहा था जो शिव की पूजा करते थे। जबकि इन खेतिहरों को मुसलमान बताता है। इससे यह पता चलता है कि चटगांव के इन निचले खेती के इलाकों में कृषि का फैलाव और इस्लामीकरण साथ-साथ ही हो रहे थे।

अनुदान पाने के तरीके

तीन प्रत्यक्ष तरीके दिखाई देते हैं जिससे धार्मिक भद्रपुरुषों (Religious Gentry) ने ज़मीन पर अधिकार प्राप्त किए थे। ये थे दान, खरीदी और कृषि विस्तार। पहला तरीका तो वही था जिसे बुखानन ने 18वीं सदी के आखिर में देखा था जब कोई व्यक्ति किसी ज़मीन पर अपना अधिकार सिद्ध करने के लिए किसी वैध अधिकारी द्वारा प्रदान किए गए दस्तावेज़ प्रस्तुत करता था। मुगल दस्तावेज़ों में ये सरदार, चौधरी या ज़्यादातर ज़मींदार के नाम से वर्णित थे। इनमें जो मुसलमान थे वे संभवतः उन सैनिकों के वंशज थे, जो 1666 के अभियान के समय चटगांव आए थे। और हिन्दू उन किरानियों या बाबुओं के वंशज थे जो सेना के साथ आए थे; और जो बुखानन के अनुसार सरकारी अधिकारियों तक अपनी पहुंच का इस्तेमाल नई ज़मीनें अपने नाम कराने में करते थे।

किसी आवेदक को जंगल साफ कर मस्जिद या दरगाह बनाने की आज्ञा देकर ज़मींदार इन आवेदकों के संरक्षक बन जाते थे। यहां यह भी ध्यान देने की बात है कि इस समय यानी 18वीं सदी के मध्य में इस संरक्षण की व्यवस्था में साम्प्रदायिक रंग नहीं था – कई हिन्दू चौधरी मस्जिदों के संरक्षक थे तो कई मुसलमान चौधरी मंदिरों के। काफी पहले यानी सन् 1705 में औरंगज़ेब के शासन काल के अंत में फटिकचारी थाना के एक ठाकुर चंद ने 17.5 एकड़ जंगली ज़मीन एक स्थानीय काज़ी को मस्जिद बनाने व उसके रख-रखाव के लिए दी थी। इसके विपरीत रंगुनिया थाने के एक मुस्लिम चौधरी मीर इब्राहीम ने 3.2 एकड़ ज़मीन एक मुकुंदराम को देवोत्तर के रूप में एक मंदिर की व्यवस्था के लिए दी थी।

दान प्राप्त करने का तरीका यह होता था कि कोई मुस्लिम कृषि विस्तारक स्थानीय ज़मींदार से मस्जिद

या दरगाह बनाने के लिए जंगल की कुछ ज़मीन प्राप्त करता था। ज़मींदार उसे एक दस्तावेज़ देता था कि फलां जंगल ज़मीन उसे दान में दी। उसके बाद वह व्यक्ति उस दस्तावेज़ को मुगल अधिकारियों के पास इस औपचारिक अनुरोध के साथ ले जाता था कि उस जंगल ज़मीन पर, जिसे वह मस्जिद या दरगाह के रख-रखाव के लिए खेती में इस्तेमाल करना चाहता है या कर रहा है, उसके अधिकार को कानूनी मान्यता मिल जाए।

जांच-पड़ताल करने के बाद चटगांव के राजस्व अधिकारी एक सनद जारी करते थे, जिस पर चटगांव सरकार के मुख्य लगान अधिकारी या आमिल के दस्तखत होते थे और वर्तमान मुगल शासक की मुहर। इस सनद द्वारा आवेदक को उस संस्था तथा उससे जुड़ी ज़मीन पर न्यासित्व (तौलियात) को सरकारी मान्यता मिल जाती थी। इस प्रकार से आवेदक उस ज़मीन का कानूनी मालिक भी हो जाता था तथा उसकी फसल का उपभोग संस्था की सहायता के अलावा खुद के लिए भी करने का अधिकार उसे मिल जाता था। वास्तव में स्थानीय ज़मींदार, कृषि विस्तारकों या शेखों को अपनी जंगली ज़मीन दान में देकर संरक्षण की पुरानी भारतीय परंपरा का ही पालन कर रहे थे। बौद्ध, जैन व हिन्दू संदर्भों में मठों व ब्राह्मणवादी संस्थाओं को ज़मीन दान देकर ही धार्मिक महत्व प्राप्त होता था। यह परंपरा दानकर्त्ताओं और दान प्राप्त करने वाले संरक्षकों के बीच सांस्कृतिक संबंध को मज़बूत करती थी।

कुछ धार्मिक भद्रपुरुषों ने इन अविकसित जंगलों पर ज़मींदारों से खरीद कर भी अधिकार हासिल किए थे। लेकिन ऐसी अवस्था में दानकर्त्ता व दान प्राप्तकर्ता के बीच वो सांस्कृतिक संबंध नहीं बन पाते थे जो संरक्षण के परंपरागत हिन्दुस्तानी तरीकों में बनते थे।

अनुदानियों में ज़मीन अधिग्रहण का तीसरा और सबसे प्रचलित तरीका था उन जंगलों को साफ करना जिस पर कोई ज़मींदार अपना दावा नहीं करता था। ऐसे मामलों में ज़मीन दान में या खरीद कर नहीं ली जाती थी बल्कि कोई एक नेता या कृषि विस्तारक उन क्षेत्रों में जंगल साफ कर बस्ती बसाता था तथा उन ज़मीनों पर जंगल साफ करने के अधिकार (जंगल-बरी-मऊरुथी) के तौर पर कर-मुक्ति का दावा करता था। उदाहरण स्वरूप मुहम्मद सादिक ने 1722 में मुगल अधिकारियों को सूचना दी कि उसने व उसके आश्रितों ने रौजाना थाना के अंतर्गत आने वाले जंगल में 57.6 एकड़ ज़मीन साफ की है तथा वहां एक मस्जिद भी बनाई है। सादिक ने उस ज़मीन पर जंगल काटने पर मिले

अधिकार का दावा किया और मुगल अधिकारियों से अनुरोध किया कि उसके दावे की पुष्टि की जाए जिससे उसके आश्रितों का जीवन-यापन हो सके। इस तरह किसी बड़े ज़मींदार की अनुपस्थिति में सादिक खुद उस ज़मीन का ज़मींदार बन गया।

संत से ज़मींदार, ज़मींदार से संत

इन कृषि विस्तारक धार्मिक भद्रजनों की धार्मिक पहचान क्या थी? कुछ स्थानीय संतों को मुसलमान संत का जामा पहना दिया गया था, धार्मिक मुसलमानों को सूफी संत का दर्जा दिया गया और कुछ लोगों के बारे में ये कहा जाता था कि उनकी उत्पत्ति मध्यपूर्व में हुई है। इनमें से कुछ संत या बाबा स्थानीय थे जिनकी आराधना चटगांव क्षेत्र के निवासी मुसलमानों के आने के पहले से करते आ रहे थे। उदाहरण के लिए 1723 और 1733 में 25.6 एकड जमीन एक स्थानीय 'दरवेश' काली शाह की दरगाह और उस पर आश्रितों को दी गई थी। काली शाह का नाम उन्हें देवी काली से जोड़ता है। 1725 में बाओलखानी थाना के चरनदीप में किसी 'जंगल पीर' के सम्मान में बनी एक मज़ार का पता चलता है। इनके नाम से पता चलता है कि वे जंगल में रहते थे। अनुदानों के माध्यम से चटगांव के ये स्थानीय पीर या संत मुगल साम्राज्य की धार्मिक-राजनैतिक व्यवस्था या दिल्ली में बादशाह के महल से निकलने वाले संरक्षण का हिस्सा बन जाते थे। फिर भी मस्जिदों व मज़ारों से उनका संबंध उन्हें इस्लामी संस्कृति के नुमाइंदे के रूप में बनाए रखता था।

संक्षेप में कहें तो चटगांव के इन जंगलों में रहने वाले लोगों में चमत्कारी संतों की शिक्षाओं को मानने की इसी प्रवृत्ति ने किसी बाहरी व्यक्ति को भी संत बनने और जनता से मान्यता प्राप्त करने में कोई मुश्किल नहीं होने दी होगी। बाद में चलकर इन बाहरी या विदेशी संतों की चमत्कारिक बातें बेहद आम हो गईं और उनके वंशज राजस्व व्यवस्था में छोटे ज़मींदार बनकर रह गए। ऐसा ही पीर उमर शाह के बेटों के साथ हुआ। वे नोआखाली के उस क्षेत्र के ज़मींदार हो गए जिसे उनके संत पिता ने जंगल साफ कर बसाया था। चटगांव में रखे सनदों के संग्रह में से जो पहला अनुदान है वही इस बात की साफ तौर पर जानकारी देता है। शेख मुहम्मद बरबक मगरिबी (उनके नाम से ही लगता है कि उनका संबंध उत्तर-पश्चिमी आफ्रिका से था) 1666 में चटगांव के जंगलों में जाकर बसे थे। वहां उन्होंने तथा उनके अनुयायियों ने एक मस्जिद बनवाई और मुगल सरकार से प्राप्त 166.4 एकड़ जंगल की ज़मीन साफ कर उसे खेती के लायक बनाया। इसके करीब

100 साल बाद उनके अनुयायियों के वंशजों ने उस ज़मीन पर लगान-माफी का अधिकार मांगा क्योंकि वो ज़मीन उनके पूर्वजों ने साफ की थी और जंगल-बरी-मऊरुथी के तहत ये उनका अधिकार बनता था।

बंगाल के इस सीमांत क्षेत्र की सामाजिक व्यवस्था इतनी लचीली थी कि अगर कोई संत या उसका वंशज ज़मींदार बन सकता था तो कोई ज़मींदार भी संत बन सकता था। एक तरफ संत अनुदान पाकर ज़मींदार बन रहे थे तो दूसरी तरफ ज़मीन के मालिक 'संत' बन रहे थे। चटगांव में एक शेख माणिक थे जिन्हें तत्कालीन दस्तावेज़ फतहपुर परगने का एक ज़मींदार बताते हैं। 1715 में शेख माणिक ने सरकारी अधिकारियों को यह बताया था कि उन्होंने हथज़ारी थाने की पश्चिमी पट्टी में एक मस्जिद बनवाई है और उनके पास इतनी संपत्ति नहीं है कि वे इसका रख-रखाव कर सकें; इसलिए उन्हें थोड़ी जंगल ज़मीन दी जाए। सरकार ने उन्हें 54.5 एकड़ ज़मीन दी और मस्जिद का न्यासी भी घोषित किया। 1755 तक आते-आते यानी मस्जिद बनने के 40 वर्ष बाद हम पाते हैं कि शेख माणिक की कब्र पर एक दरगाह बन गई थी और उनका बेटा ज़फर मुहम्मद उसका मैनेजर। इस समय तक यह मज़ार इस कदर संस्थागत हो गई थी कि सरकारी तंत्रों की नकल करते हुए यहां से दस्तावेज़ जारी होते थे जिन पर 'शेख माणिक की दरगाह' की मुहर लगी रहती थी।

जन सामान्य में प्रचलित सूफीवाद ने नए कृषक समूहों को स्थापित करने वालों की याद को जन मानस में स्थापित करने में मदद की। यहां भी इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि शेख माणिक आदि को इस्लामी रहस्यवाद की ज़रा भी जानकारी थी। न ही इनके नाम अखिल भारतीय संतों की सूची में पाए जाएंगे। लेकिन इस संस्थागत सूफीवाद से ही पीर-मुरीद या गुरू-शिष्य की असमान श्रेणी निकली जिसने सूफीवाद में अधिकारों के बंटवारे, संरक्षण देने और अनुशासन बनाए रखने का एक तरीका दिया। ये सारी चीज़ें राज सत्ता के इस सीमांत क्षेत्र में मज़दूरों को जमा करने और उनसे काम लेने के लिए बहुत ज़रूरी थीं। इसलिए इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि पूर्वी बंगाल के इस जंगली सीमांत क्षेत्र में क्यों इतने सारे सूफी हुए।

सिल्हट के धार्मिक भद्रजन

मुसलमानों की विजय के समय चटगांव की तरह बंगाल के उत्तरी पश्चिमी कोने पर बसा सिल्हट भी घने जंगलों से घिरा क्षेत्र था। इसका दक्षिणी इलाका जो कि आज सिल्हट व मैमनसिंह ज़िला है पानी से भरा

था और यहां अनार्य जाति के मछुआरे, खासकर कैवर्त रहते थे।

1660 के बाद से इस क्षेत्र में खेती के विकास के साफ सबूत मिलते हैं। आगे दी गई तालिका से यह पता चलता है कि 1660 से 1760 के बीच सिल्हट में फौज़दार के दफ्तर से कितनी ज़मीन विभिन्न व्यक्तियों को अनुदान में दी गई। हालांकि यहां के 26 फौज़दारों में से सिर्फ एक हिन्दू था फिर भी यहां से दिए गए अनुदानों में हिन्दू संस्थाओं का हिस्सा काफी अच्छा था। वास्तव में ब्राह्मणों को उसकी ज्ञान व पवित्रता के लिए दिया जाने वाला ब्राह्मणोत्तर अनुदान सबसे बड़े किस्म का अनुदान था जिसमें प्रत्येक को औसतन 22.9 एकड़ ज़मीन मिलती थी।

चटगांव की तरह यहां के मुगल अधिकारी भी अनुदान की पहल नहीं करते थे बल्कि स्थानीय ज़मींदारों व धार्मिक व्यक्तियों के बीच हुए समझौतों को सिल्हट के मुगल फौज़दार मान्यता दे देते या मुहर लगाते थे। उदाहरण स्वरूप 1721 की एक सनद उस दस्तावेज़ की पुष्टि करती है जिसमें एक स्थानीय ज़मींदार ने किसी महादेव भट्टाचार्य नामक ब्राह्मण को उसके हिन्दुशास्त्रों के वृहद ज्ञान के कारण 39 एकड़ जंगल की ज़मीन अनुदान में दी थी। ब्राह्मणों का गरीब होना या उनके हिन्दुशास्त्रों के ज्ञान की ख्याति ही ज़्यादातर ब्राह्मणोत्तर अनुदानों में दान के औचित्य को स्थापित करते थे।

हिन्दुओं या हिन्दू संस्थाओं को दिया जाने वाला दूसरे किस्म का अनुदान देवोत्तर था। इसमें मंदिरों या देवस्थानों के रखवालों को करमुक्त ज़मीन दी जाती थी। 8 दिसंबर, 1720 को दिए गए एक अनुदान के अनुसार: "चकला सिल्हट के मधुदास सेन के घर में ठाकुर की एक बहुत ही अभिभूषित मूर्ति है। लेकिन आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उनकी पूजा नहीं हो पा रही है। अतः रोज़ाना पूजा पाठ के लिए ब्राह्मण पुजारी के लिए और उस जगह की भलाई के लिए 273 एकड़ जंगल ज़मीन जो कि लगान रजिस्टर में दर्ज़ नहीं है राम दास सेन को देवोत्तर के रूप में दी जाती है।"

सिल्हट के मुगलों ने वैष्णव और शैव संतों को भी विषणोत्तर और शिवोत्तर अनुदान दिए थे। उदाहरण के लिए 1725 में गोविंद दास नामक वैष्णव बैरागी को इस सम्मान के लायक समझा गया और 15.6 एकड़ जंगल ज़मीन दी गई।

इसी तरह का एक अनुदान 'चिरागी' होता था जो मुसलमान संतों की दरगाहों की सहायता के लिए दिया जाता था। इस तरह के कुछ मामलों में तो लगान अधिकारी स्थानीय ज़मींदारों द्वारा दिए गए अनुदानों पर सिर्फ मुहर लगा देते थे। जैसा कि

1755 में रहमान बक्श नामक फकीर को स्थानीय ज़मींदार व तालुकदार ने एक मस्जिद व मज़ार में फातिहा पढ़ने के लिए 21 एकड़ ज़मीन दी थी। इसी तरह 1754 में नसीर अली फकीर को एक हिन्दू ज़मींदार ने 3.9 एकड़ ज़मीन इसी काम के लिए दी थी। कुछ दूसरे मामलों में कृषि विस्तारक सरकारी अनुदान के लिए आवेदन करते थे कि वे किसी मस्जिद या मज़ार की सहायता के लिए जंगल ज़मीन साफ करना चाहते हैं। मिसाल के लिए सरकार ने 1 जनवरी, 1734 को शेख अहमद हाजी की दरगाह के नौकर सैयद महदी को 13 एकड़ अविकसित जंगल दिया था। सरकारी आदेश था कि इस ज़मीन की आय से मज़ार पर कुरान शरीफ का पाठ हो और दीया बत्ती की जाए।

इसके अलावा एक और श्रेणी थी जिसे 'मदद-ए-माश' कहते थे और जो व्यक्तिगत अनुदान होता था। जैसा कि चटगांव की सनदों से पता चलता है, ये ऐसे व्यक्तियों को दिया जाता था जिन्होंने किसी मस्जिद आदि का निर्माण करवाया हो। इसी तरह का एक अनुदान शेख मुहम्मद को दिया गया था जिन्होंने जंगल में एक मस्जिद बनवाई थी और बाद में उसके कर्मचारियों की देखभाल करने में असमर्थता ज़ाहिर की थी। 25 जुलाई 1749 को सिल्हट सरकार ने शेख मुहम्मद के घर-परिवार व मस्जिद के लिए 390 एकड़ ज़मीन दान में दी।

जैसा कि सबको मालूम है कि 1672 में औरंगज़ेब ने आदेश दिया था कि हिन्दुओं को दिए गए सभी मदद-ए-माश अनुदान वापस ले लिए जाएं और आगे से केवल मुसलमानों को ही दिए जाएं। लेकिन जैसी कि एक पुरानी फारसी कहावत है 'दिल्ली अभी काफी दूर थी'। सिल्हट के मुगल अधिकारियों ने 1672-73 के बाद हिन्दुओं को जो मदद-ए-माश जारी किए उनकी संख्या पहले की संख्या से ज़्यादा थी।

औरंगज़ेब के आदेश के बाद 1673 से 1707 के बीच 14 ऐसे अनुदान जारी किए गए जबकि उससे पहले 1658 से 1672 तक केवल ग्यारह ऐसे अनुदान दिए गए थे। जैसा कि तालिका से पता चलता है कि आगे चलकर ऐसे अनुदानों में हिन्दुओं का प्रतिशत दिनों-दिन काफी कम होता गया। अगर पूरे मुगल काल को भी ले लें तो भी मुसलमानों को दी गई ज़मीन की मात्रा का औसत, हिन्दुओं के औसत से नौ गुना ज़्यादा था। मुसलमानों को औसतन 170.1 एकड़ ज़मीन दी गई थी तो हिन्दुओं को केवल 26.2 एकड़।

चटगांव की तरह सिल्हट में भी अनुदानों को देने के पीछे राजनैतिक व आर्थिक कारण ही हुआ करते थे। 1753 में जारी एक सनद के अनुसार

तालिका 1 – सिल्हट में 1660-1760 के बीच दिए गए कर मुक्त अनुदान (अनुदानों की संख्या के आधार पर)

शासक	ब्राह्मणोत्तर	देवोत्तर	विषणोत्तर	शिवोत्तर	मदद-ए-माश हिन्दू	मदद-ए-माश मुसलमान	चिरागी
औरंगज़ेब (1658-1707)	4	1	–	–	23	8	1
शाहआलम (1707-12)	1	–	–	–	–	–	–
फर्रूखसीयर (1713-19)	–	–	–	–	2	–	–
मुहम्मदशाह (1719-48)	337	54	2	3	22	55	39
अहमदशाह (1748-54)	91	27	1	1	6	35	13
आलमगीर (1754-59)	95	25	1	–	3	38	20
कुल योग	528	107	4	4	56	136	73

तालिका 2 – सिल्हट में 1660-1760 के बीच दिए गए कर मुक्त अनुदान (अनुदानों के क्षेत्रफल के आधार पर, एकड़ में)

शासक	ब्राह्मणोत्तर	देवोत्तर	विषणोत्तर	शिवोत्तर	मदद-ए-माश हिन्दू	मदद-ए-माश मुसलमान	चिरागी
औरंगज़ेब	39	4	–	–	760.9	1248	195
शाहआलम	39	–	–	–	75	–	–
फर्रूखसीयर	–	–	–	–	42.9	–	–
मुहम्मदशाह	6144	2593	7.8	35.1	429	9429	1053
अहमदशाह	2741	889	3.9	3.9	140	12987	608
आलमगीर	3143	1205	15.6	–	132	8455	1579
कुल योग	12106	4691	27.3	39	1580	32119	3435
औसत आकार	22.9	43.8	6.8	9.7	28.2	236.1	47.1

मौलवी मुहम्मद रबी के मदरसे और उनके छात्रों के लिए 4387.5 एकड़ जंगल दिया गया था। इसकी आय से उन्हें वहां एक इमाम, छात्रों के खर्च और वहां आने-जाने वाले लोगों तथा मज़दूरों का खर्च चलाना था। साथ में मौलवी मोहम्मद रबी और उनके बच्चों के लिए यह अनुदान था।

इसके तीन साल बाद उनकी संस्था को एक और सनद दी गई जिसके द्वारा उन्हें 975 एकड़ खेती के लायक ज़मीन दी गई। इसका इस्तेमाल उन्हें एक मस्जिद, घर व मदरसे के रख-रखाव और उन पर आश्रितों एवं वहां आने जाने वाले लोगों तथा फकीरों की देखभाल के लिए करना था। यह मौलवी मुहम्मद रबी, उनकी संस्था तथा बच्चों, आश्रितों व मज़दूरों के लिए मदद-ए-माश भी था। इसके बदले मौलवी से यह उम्मीद की गई थी कि वे राज्य की सलामती के लिए दुआ करते रहेंगे।

इन कागज़ातों से मौलवी मुहम्मद रबी के करिश्माई व्यक्तित्व व संघटनात्मक क्षमता का भी पता चलता है। हालांकि हमें उनकी संस्था के मज़दूरों के बारे में कुछ भी नहीं मालूम लेकिन दोनों सनदों से कुल मिलाकर उन्हें 5363 एकड़ ज़मीन प्राप्त हुई थी जिन्हें साफ करने और फिर उसमें खेती करने के लिए मज़दूरों की संख्या निश्चित रूप से काफी रही होगी। चूंकि दस्तावेज़ में मज़दूरों को अनुदान से जीविका प्राप्त करने वालों की श्रेणी में रखा गया है, इस बात का संकेत मिलता है कि खेतों पर काम करने वाले मज़दूर इन इस्लामी संस्थाओं के अनुयायी रहे होंगे।

पूर्वी बंगाल के अन्य क्षेत्रों की तरह सिल्हट में भी नए गांवों को बसाने वालों की वहां की स्थानीय जनता के धार्मिक विचारों को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। 1798 में उत्तरी सिल्हट के एक मुसलमान भद्रपुरुष ने बताया था कि जब भी कोई नया गांव बसता था तो अगर बसाने वाला ज़मींदार शाक्त हिन्दू होता था तो एक काली का मंदिर बनवाता था और अगर वह वैष्णव होता था तो विष्णु का मंदिर बनवाता था। अगर गांव के ज़्यादातर लोग वैष्णव होते थे तो एक राधाकृष्ण का अखाड़ा भी बनता था। और अगर गांव किसी मुसलमान द्वारा बसाया जा रहा हो तो किसी पीर की मज़ार बनवाई जाती थी। दूसरे शब्दों में अगर अनुदान हिन्दुओं या हिन्दू संस्थानों को मिलता था तो स्थानीय समुदाय हिन्दू रीति-रिवाज़ों के आधार पर ढल जाता था और अगर अनुदान मुस्लिम मदरसों, मस्जिद या दरगाहों के लिए होते तो स्थानीय समुदाय मुस्लिम रिवाज़ों पर ढल जाते थे।

शासन ने मुसलमानों को हिन्दुओं के मुकाबले काफी बड़ी मात्रा में ज़मीनें दीं जिसके कारण उन क्षेत्रों में रहने वाली ज़्यादा बड़ी जनसंख्या, हिन्दू संस्थाओं के मुकाबले मुस्लिम संस्थाओं के संपर्क में आई। यह भी उल्लेखनीय है कि मुसलमानों को दिए गए अनुदान न केवल अनुदानी व उसके आश्रितों की बात करते थे बल्कि उन संस्थाओं की भी बात करते थे जिनके ज़रिए जंगल साफ किए गए। मौलवी मुहम्मद रबी के मज़दूरों के संगठन को दिया गया अनुदान न केवल मज़दूरों की सहायता (या जीवन यापन) के लिए था बल्कि एक मस्जिद और मदरसे के लिए भी था। इस मस्जिद और मदरसे ने उन मज़दूरों का संस्थागत इस्लाम से संबंध बनाए रखा।

इसके विपरीत शाक्त ब्राह्मणों और वैष्णव वैरागियों को दिया गया अनुदान न ही आश्रितों का ज़िक्र करता था और न मुसलमानों को दिए गए अनुदानों की तरह किसी समूह निर्माण तंत्र की बात।

इस तरह मुस्लिम अनुदानों ने साफ-साफ सार्वजनिक निर्माण के कार्यों को इस्लामी संस्थाओं की स्थापना से जोड़ दिया था। अतः ऊपर वर्णित साक्ष्य कृषि और धर्म के फैलाव की उस प्रक्रिया की पुष्टि करते हैं जिनका ज़िक्र मध्यकालीन बंगाली काव्य में, 18वीं और 19वीं सदी में अंग्रेज़ों द्वारा पूर्वी बंगाल में संकलित स्थानीय परंपराओं में तथा आज भी प्रचलित कुछ परंपराओं में पाया जाता है।

सारांश

बंगाल के इस तरह बढ़ते सीमांत क्षेत्र में केवल हिन्दू या इस्लामी संस्थाओं व आबादी का ही विकास नहीं हुआ। इस क्षेत्र में ईसाई कृषि विस्तारकों ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और वो भी बिना मुगल संरक्षण के। 1713 में एक फ्रांसीसी जेसुइट पेर बारबीय (Pere Barbier) ने चटगांव व नोआखाली के अंदरुनी इलाकों की यात्रा की थी। उसने चटगांव से पांच दिन की दूरी पर बसे ईसाई किसानों की एक बस्ती भल्लुआ (नोआखाली शहर के उत्तर-पश्चिम में) का ज़िक्र किया है। वह लिखता है कि "इन ईसाइयों का मुखिया एक बूढ़ा आदमी है जो अपने पांच बच्चों और तीन-चार सौ मज़दूरों के साथ इस गांव में रह कर खेती करता है।" बारबीय जिस मुखिया से मिला था वह निश्चित रूप से बंगाली था क्योंकि उसे उससे बात करने के लिए दुभाषिए की ज़रूरत पड़ी थी। हो सकता है कि वह चटगांव शहर से आकर वहां बस गया हो क्योंकि चटगांव शहर में उस वक्त करीब दो हज़ार ईसाइयों की एक

बस्ती थी जिन्हें पुर्तगालियों ने ईसाई बनाया था। लेकिन स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति ने स्थानीय जनता में अपने लिए एक आश्रित वर्ग बना लिया था जिनके लिए वह न केवल एक ज़मींदार था बल्कि उन्हें आर्थिक व धार्मिक नेतृत्व भी प्रदान करता था। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि बंगाल के इस सीमांत क्षेत्र में कृषि के विकास से न केवल मुस्लिम या हिन्दू संस्थाओं का विकास हुआ बल्कि ईसाई धर्म जैसे कम प्रमुख धर्म की संस्थाओं का भी विकास हुआ।

इस तरह हमने देखा कि बंगाल की इस कृषकीय क्रांति ने हिन्दू और ईसाई संस्थाओं के विकास में बड़ा योगदान दिया मगर फिर भी अन्य धर्मों के मुकाबले मुसलमान भद्रपुरुष ही मुगल राजस्व अधिकारियों से संरक्षण का सबसे बड़ा भाग प्राप्त कर पाए। उन्हें सरकार द्वारा सबसे ज़्यादा मात्रा में अविकसित जंगल प्राप्त हुए और इन जंगलों को धान के खेतों में परिवर्तित करने के लिए वे बड़ी संख्या में मज़दूरों को भी आकर्षित कर पाए। इन लोगों ने यहां पर मस्जिदों व मज़ारों का निर्माण करवाया जो आगे चल कर यहां के आर्थिक और धार्मिक परिवर्तन के केन्द्र बने। इस तरह अन्य धार्मिक समुदायों के मुकाबले ज़्यादा संरक्षण या तरफदारी ने आखिरकार इन ग्रामीण क्षेत्रों में मुसलमान समुदायों के विकास को आगे बढ़ाया।

पूर्वी बंगाल में इस्लाम के फैलाव को कृषि विस्तार और कृषक समाज की स्थापना की प्रक्रिया के एक अभिन्न अंग के रूप में देखना होगा। इस्लाम ने न केवल कृषि विस्तार की प्रक्रिया को वैधता प्रदान की बल्कि उस प्रक्रिया को एक ढांचागत तरीका भी दिया। इस्लामी संस्थाओं में इतना लचीलापन था कि वे स्थानीय धार्मिक मान्यताओं को नई व्यवस्था में स्थान दे पाए। इसी तरह स्थानीय मान्यताओं व रीति-रिवाज़ों में इस्लाम को समाहित किया गया। नतीजा यह हुआ कि इस्लामी और स्थानीय बंगाली विचारधाराओं के बीच एक सृजनशील मिलन हुआ जिसके बारे में हम आगे चर्चा करेंगे।

रिचर्ड ईटन: ऐरीज़ोना विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर।
अनुवाद: गौतम पांडेय: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं।

कांटों का घरौंदा

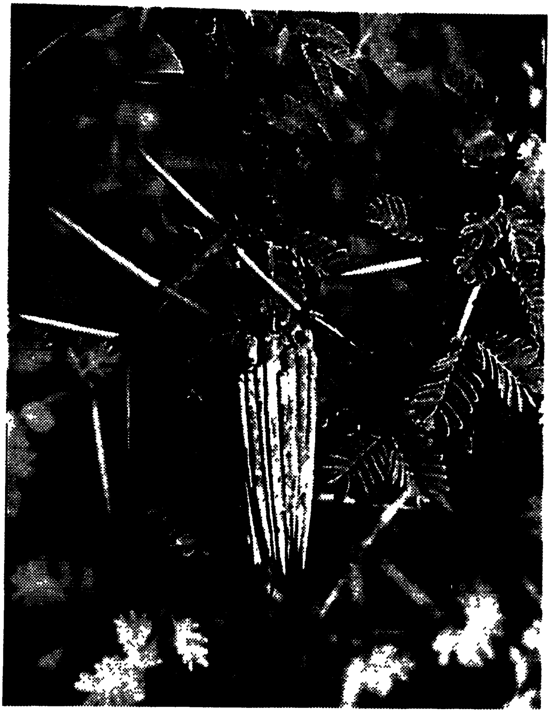

के. आर. शर्मा

मेरे घर के सामने 5-7 एकड़ का खुला-सा मैदान है। यहां कोई हरे-भरे पेड़ नहीं हैं, बंजर-सी ज़मीन पर बरसात के दिनों में घास उग आती है। इसके अलावा बहुत से बबूल के पौधे हैं। इन बबूल के पौधों को मैं पिछले पांच साल से देख रहा हूं। ये वृक्ष नहीं बन पाए। भेड़-बकरियों के चरने और मानवीय हस्तक्षेप के कारण ये संभवतः बड़े नहीं हो पा रहे हैं। इनकी ऊंचाई डेढ़-दो फीट से आगे बढ़ ही नहीं पाती। एक बार इन बबूल के बौने पौधों को ज़रा गौर से निहार रहा था कि मुझे उन पर कुछ कांटों के गुच्छे लटके हुए दिखाई दिए। बबूल में कांटे होते हैं यह तो देखा था, लेकिन

कांटों के गुच्छे. . . . ! ज़रा और बारीकी से देखा तो ऐसा अहसास बना कि हो-न-हो यह तो किसी कीड़े का कारनामा लगता है।

जब मैंने इन कांटों के गुच्छों को देखा था तब गर्मी के दिन थे। लेकिन जब हाल ही में बरसात के दिनों में देखा तो कांटों का गुच्छा चलता-फिरता दिखाई दिया। अब मेरे पास दो किस्म के अवलोकन थे, एक कि बरसात में यह कीड़ा इस कांटों के खोल को लिए इधर-उधर टहलता है। और दूसरा कि ठंड-गर्मी के दिनों में यह बबूल की टहनियों से चिपका रहता है।

इतना सब देखकर मैंने काफी सोचा कि आखिर मसला क्या है, पर जानकारी के अभाव में उस समय मामला ठंडा पड़ गया।

पिछले दिनों एक बार फिर कांटों के गुच्छों को देखकर सोचा कि चलो इस कांटों के खोल को तोड़कर और फिर खोलकर इसमें रहने वाले कीट को देखना चाहिए। मैंने बबूल के पौधे से एक कांटों के गुच्छे को तोड़ना चाहा। मुझे लग रहा था कि यह गुच्छा आसानी से मेरे हाथ में आ जाएगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ। टहनी से अलग करने में काफी मशक्कत की, पर नहीं टूटा। आखिरकार ब्लेड से काटा।

ब्लेड की सहायता से इस कांटे के खोल को काटकर देखा तो पाया कि इसके अंदर काले-भूरे रंग की एक इल्ली पड़ी हुई है। मैंने सोचा कि यह इसकी प्यूपा अवस्था होगी।

आमतौर पर कीटों में लार्वा (इल्ली) अवस्था काफी सक्रिय दिखाई देती है। और प्यूपा निष्क्रिय अवस्था में पड़ा रहता है। और प्यूपा से वयस्क जीव बनता है जो एकदम अलग दिखता है। लेकिन इस कीट के मामले में मेरे अवलोकन थोड़े फर्क हैं, इसलिए इन्हें सिलसिलेवार लिख रहा हूं।

चलता-फिरता कांटे का खोल

मादा कीट अंडे देती है और अंडों के फूटने पर उनमें से लार्वा निकलता है। यह लार्वा बबूल के कांटों को इकट्ठा करके उनका एक शानदार खोल बनाता है और उसमें रहता है। आमतौर पर कई कीटों में लार्वा अवस्था में कीट काफी स्वच्छंद होकर बिना कोई आवरण ओढ़े रेंगते हुए दिखाई पड़ते हैं। परन्तु यह लार्वा अपवाद है जो बाहरी वस्तुओं यानी कि कांटों का खोल बनाकर उसमें रहता है। इस अवस्था में यह अपने मुंह वाले हिस्से को अंदर-बाहर उसी प्रकार कर सकता है जिस प्रकार कछुआ अपने सिर को कड़े खोल में से अंदर-बाहर करता है। जब इसको छेड़ा जाए तो अपने आपको इस कांटे के खोल में बंद कर लेता है। मैंने इसे केवल बरसात के दिनों में ही देखा है।

टहनी से चिपका काट का खोल

जैसा कि मैंने पहले बताया था टहनी से चिपके कांटे के खोल में निष्क्रिय रूप से इल्लीनुमा रचना पड़ी रहती है। पहले मैंने सोचा था कि यह कीट की प्यूपा अवस्था है पर मेरा ऐसा सोचना पूरी तरह ठीक नहीं था। थोड़ी खोजबीन के बाद मुझे इस कीट के बारे में कुछ जानकारी मिली।

यह कीट दरअसल पतिंगे (मॉथ) की एक प्रजाति है। इसका नाम है साइकिड मॉथ (Psychid moth)। हिन्दी नाम पता नहीं। आमतौर पर लोग केवल कांटे के खोल को ही देख पाते हैं। वयस्क यानी कि पंख वाले पतिंगे को नहीं जानते। इस कांटे के खोल वाले कीड़े को 'कांटे का कीड़ा' कहते हैं।

मादा पतिंगा – नर पतिंगा

दरअसल इस कीट का सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि इसमें वयस्क मादा पतिंगा पंख विहीन और इल्लीनुमा ही होती है। वह ताज़िंदगी इसी खोल में ही रहती है। यानी कि वह जन्म इसी में लेती है और आखरी सांस भी इसी खोल में लेती है। मादा वयस्क पतिंगे का संबंध बाहरी दुनिया से केवल हवा का ही होता है। बाकी वह इस खोल में ही रहती है।

प्यूपा यदि नर का है तो इसमें से पंख वाला वयस्क नर निकलता है जो स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन करता है। इसका मतलब यह हुआ कि नर में तो पूरी तरह से कायांतरण होता है पर मादा में नहीं। कांटे के खोल में देखकर यह तय कर पाना मुश्किल है कि यह प्यूपा है या मादा।

कैसे होता है प्रजनन

बरसात शुरू होने के दौरान नर पतिंगा इल्लीनुमा मादा पतिंगे से (जो कि कांटे के खोल में बंद रहती है) संपर्क स्थापित करता है। नर पतिंगा

खोल के ऊपरी सिरे से एक छेद करता है और अपने शरीर के उदर यानी कि पेट वाले भाग को इस खोल में प्रवेश कराता है। नर पतिंगे का उदर वाला भाग खंडित होता है जिसको वह सुविधानुसार लंबाई में सिकोड़ सकता है या बड़ा कर सकता है। इस तरह उदर भाग को खोल में डालकर नर पतिंगा खोल में छिपी मादा के शरीर में शुक्राणु प्रवेश कर देता है। तत्पश्चात मादा के शरीर में अंडों का निषेचन होता है और मादा पतिंगा इसी खोल में अपने आप को काफी सिकोड़ लेती है ताकि अंडों को रखने की पर्याप्त जगह बन सके।

इस पुराने कांटे के खोल में ही अंडे फूटते हैं और उनमें से छोटे-छोटे लार्वा निकलते हैं। लार्वा खोल से बाहर निकलकर कांटे इकट्ठे करके अपना एक नया घरोंदा बनाते हैं।

दरअसल इस कीट को लेकर अभी भी काफी सारे सवाल अनुत्तरित हैं। मसलन इसके जीवन चक्र में अंडे से लार्वा व प्यूपा कितने दिन में निकलते

कांटे के खोल के भीतर का नज़ारा

हैं? मादा पूरे जीवन भर खोल में ही रहती है तो उसके भोजन का क्या होता होगा आदि, आदि। अगर आप में से किसी को इन सवालों के जवाब मालूम हैं या अपने पुस्तकालय में उपलब्ध किताबों में ढूंढ पाएं तो संदर्भ में ज़रूर लिखें ताकि औरों को भी जानने का मौका मिले।

के. आर. शर्मा: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। उज्जैन में रहते हैं।
सभी फोटो: के. आर. शर्मा।

कांटों का घरोंदा और उसमें रहने वाला जीव। फोटो: के. आर. शर्मा। →

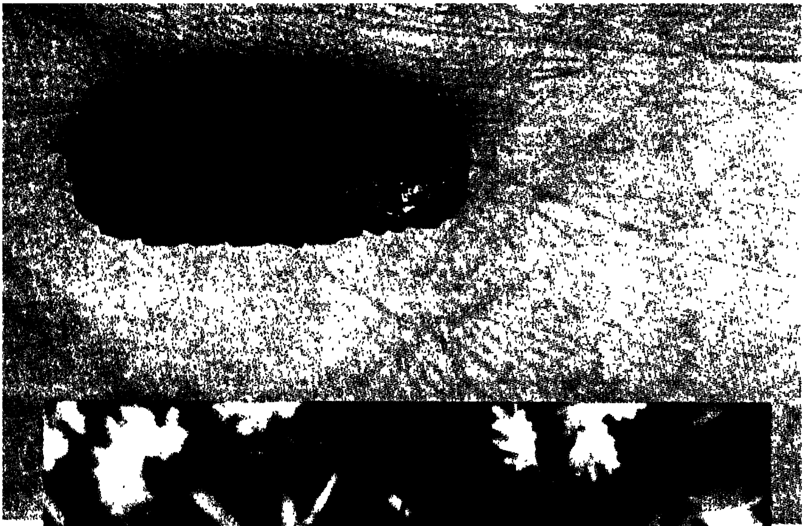

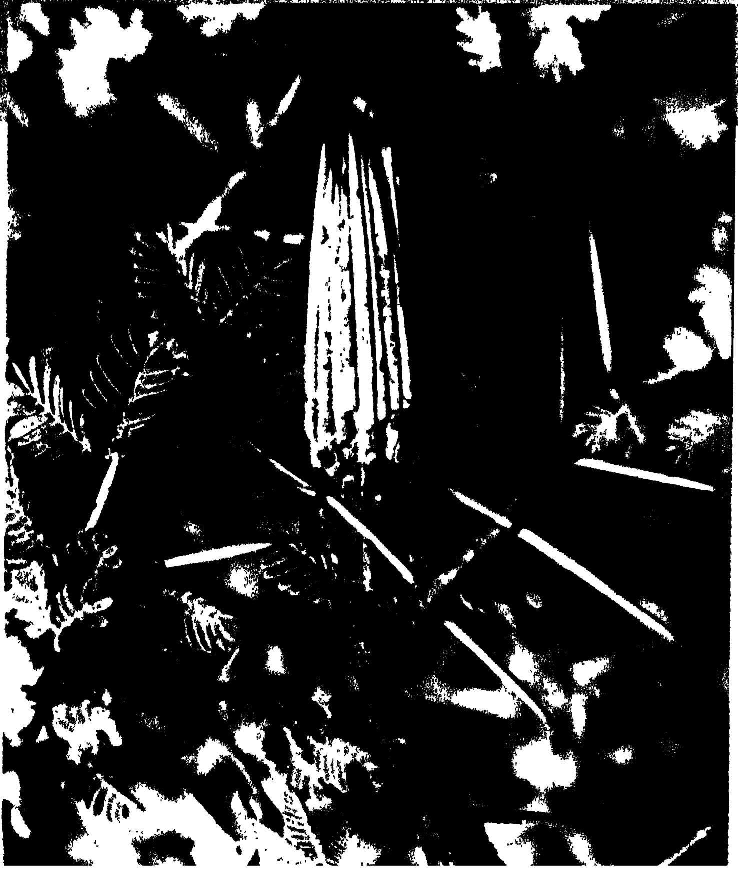

12736